ओ३म्

वैदिक संस्कृति का उद्घोषक

वैदिक सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली का साप्ताहिक मुख-पत्र

शुल्क :- एक प्रति 5 रुपया (भारत में) वार्षिक 250 रुपये तथा आजीवन 2500 रुपये

वर्ष 18 अंक 52 कुल पृष्ठ-12 2 से 8 नवम्बर, 2023 दयानन्दाब्द 198 सृष्टि सम्वत् 1960853124 सम्वत् 2080 आ. शु.-12

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जन्म जयन्ती को भव्यता के साथ मनाने का संकल्प लें

समाज एवं राष्ट्र को आर्य समाज की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है

महर्षि दयानन्द जी द्वारा दिखाये गये रास्ते पर चलकर ही विश्व का कल्याण होगा

– स्वामी आर्यवेश

महर्षि दयानन्द सरस्वती का दीपावली पर्व से गहरा सम्बन्ध है। दीपावली के ही दिन महर्षि दयानन्द जी ने अपना भौतिक शरीर छोड़ते समय संसार को सन्देश दिया था – "असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतम् गमय। समूचा आर्य जगत दीपावली के पर्व को ऋषि निर्वाणोत्सव के रूप में मनाता है और इस दिन उनके बलिदान, महत्व, योगदान और विशेषताओं को स्मरण किया जाता है। उन्हें नम्र श्रद्धांजलि दी जाती है। आर्य समाज के इतिहास में दीपावली का पर्व स्वामी जी का स्मृति पर्व है।

19वीं शताब्दी के आग्नेय पुरुष, प्रात: स्मरणीय, वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जब कार्य क्षेत्र में अवतरित हुए उस समय चारों तरफ, हताशा, निराशा, अन्धकार, अंग्रेजों का दमन चक्र, स्वाभिमान का अभाव, धर्म के नाम पर पाखण्ड, सत्य के नाम पर असत्य तथा ज्ञान के नाम पर अज्ञान का साम्राज्य व्याप्त था। ऐसे समय में महर्षि ने जन मानस को नई शक्ति, प्रेरणा तथा दिशा दी और भारत के कण-कण में स्फूर्ति का संचार किया। पाखण्डों का खण्डन कर, कुरान, बाईबिल के प्रभाव पर प्रबल प्रहार कर महर्षि ने राम, कृष्ण और ऋषि-मुनियों की पावन परम्परा को पुन: प्रवाहित किया। वेद ज्ञान की ज्योतिर्मय पताका फहराने के लिए जन-जन में वेद ज्ञान के प्रति आस्था जगाई। वर्तमान युग में यह बात किसी से छिपी नहीं है कि महर्षि दयानन्द जहाँ एक ओर प्राचीनता के पक्षधर और वेदोद्धारक थे वहीं वे दूसरी ओर नवयुग के नेता, वर्तमान के विधाता और भविष्य के पथ प्रदर्शक भी थे।

वेद ज्ञान के प्रसारक महर्षि दयानन्द सरस्वती, पाखण्डों को खण्ड-खण्ड करते हुए प्राचीन ऋषि मुनियों की पावन परम्परा के अजस्र प्रवाह को प्रवाहित करते हुए भारत के कोने-कोने में सत्य ज्ञान फैलाते हुए घूमते रहे। अपने अपूर्व ज्ञान, तप, त्याग और अगाध पाण्डित्य से स्वामी दयानन्द ने भारत के गौरव को पुन: प्रतिष्ठित किया तथा 1875 में बम्बई में 'आर्य समाज' नामक संगठन को स्थापित किया।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आर्य समाज की स्थापना से लेकर कालान्तर तक आर्य समाज ने अपनी कीर्ति पताका देश तथा विदेश में फहराई है और जो अद्भुत कार्य करके दिखाये हैं वह सर्वविदित है, शिक्षा प्रसार, समाज सुधार, नारी जाति का उत्थान, दलितोद्धार एवं स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व और वैदिक धर्म के प्रचारार्थ आर्य समाज ने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किये हैं जिन पर हम गर्व कर सकते हैं। वर्तमान परिस्थितियों में पूरे विश्व को नई दिशा देने का दायित्व आर्य समाज पर आता है क्योंकि समाज में व्याप्त छुआछूत, धार्मिक पाखण्ड तथा अन्धविश्वास, नशाखोरी, जातिवाद, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, गोहत्या, नारी उत्पीड़न एवं शोषण आदि समस्याओं से समाज पहले से कहीं अधिक त्रस्त है और इन बुराईयों की तरफ किसी संगठन या संस्था का विशेष ध्यान नहीं है। यद्यपि कतिपय राजनैतिक संगठन अपने निहित स्वार्थों को साधने के लिए उक्त मुद्दों पर नारेबाजी एवं शोषेबाजी करते दिखाई देते हैं किन्तु सामान्य जनता उनसे संतुष्ट नहीं है ऐसी स्थिति में आम व्यक्तियों की निगाहें आर्य समाज के ऊपर लगी है। महर्षि दयानन्द द्वारा निर्देशित पथ के पथिक बनकर आज भी हम सामाजिक बुराईयों से त्रस्त समाज को मुक्ति दिला सकते हैं और जिसकी आज महती आवश्यकता भी है। लेकिन आज

हम अपने लक्ष्य और उद्देश्य से भटक गये हैं। आर्य समाज में कार्य तो बहुत हो रहा है लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर उसे दिखा पाने में हम असमर्थ रहे हैं। हमारा सारा कार्य बहिर्मुखी न होकर अन्तरमुखी हो रहा है और हम सब आम जनता के बीच नहीं जा पा रहे हैं। आज आवश्यकता है क्रांतिकारी चरित्र, तेजस्वी स्वरूप और प्रभावशाली ढंग से एकजुट होकर कार्य करने की, तथा लोक कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से ज्ञान सम्मत, तर्कपूर्ण वैदिक सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुंचाने की तथा पूरे विश्व के आर्यों को समाज के त्रस्त लोगों को साथ लेकर आर्य समाज के संगठन को व्यापक स्तर पर खड़ा करने की।

आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य, नेता, उपदेशक, संन्यासी आदि को आदर्श उपस्थित करने की चिंता होनी चाहिए ताकि भावी पीढ़ी इसे अपनी श्रद्धा भरी आंखों में कैद करके सर्वदा आदेश को ही लक्ष्य के रूप में देखें। आज समस्याओं से निपटने के लिए हमारा एक विशाल संगठन है। हम यह सोचें कि यदि अकेला दयानन्द इनसे भी भीषण परिस्थितियों से जूझकर युग परिवर्तन कर सकता है

तो ऐसे आदर्श गुरु के अनुयायी आज अकर्मण्य क्यों हैं? महर्षि जी ने जो बात कही वह सम्पूर्ण विश्व के लिए कही तथा उन्होंने कभी असत्य का समर्थन नहीं किया। फिर हम क्यों नहीं उनके आदर्शों पर चलते हैं? हम कैसे भूल गये कि महर्षि जी जब पाखण्ड के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते थे और तेजस्वी वाणी से पाखण्ड पर प्रहार करते थे तो पाखण्डियों में खलबली मच जाती थी और प्रकाश के आवरण में सामाजिक बुराईयों का अन्धकार नष्ट हो जाता था। यह सर्वविदित है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक अन्धविश्वास तथा पाखण्ड के विरुद्ध पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड़कर अवैदिक मत-मतान्तरों तथा मान्यताओं को खुली चुनौती दी थी और उन्होंने शास्त्रार्थ की परम्परा प्रारम्भ करके बड़े-बड़े दिग्गज पौराणिक विद्वानों की बोलती बन्द कर दी थी। शास्त्रार्थ के द्वारा महर्षि दयानन्द और अनेक अन्य अनुयायियों ने वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करके मानवता का महान उपकार किया था। अत: आज आवश्यकता है पाखण्ड के विरुद्ध प्रचण्ड अभियान चलाने की तथा शास्त्रार्थ की परम्परा को पुन: प्रारम्भ करने की।

आर्य समाज के कार्यों को सिद्धान्त के अनुरूप करने तथा समन्वित अभियान चलाने की कार्य योजना प्रस्तुत की जा रही है। जिसे प्रत्येक स्तर पर क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

1. आर्य समाज के मुख्य दिवसों जैसे महर्षि निर्वाण दिवस, बोध दिवस, स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस, महात्मा हंसराज जन्म दिवस, पं. लेखराम बलिदान दिवस, गुरुदत्त विद्यार्थी जन्मोत्सव, राम प्रसाद बिस्मिल बलिदान दिवस, भगत सिंह बलिदान दिवस, आर्य समाज स्थापना दिवस, लाला लाजपत राय, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, महात्मा नारायण स्वामी आदि के जन्मोत्सव, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, राम नवमी, श्रावणी पर्व तथा अन्य मुख्य पर्वों अथवा दिवसों पर एक साथ पूरे देश तथा विदेशों में उत्साहपूर्ण ढंग से कार्यक्रम आयोजित किये जायें। प्रयास किया जाये कि कार्यक्रमों में सम्मिलित होने वाले समस्त व्यक्तियों की वेशभूषा एक समान हो तथा गले में ओ३म् पट्ट हों। उस दिन विशाल स्तर पर यज्ञ हो और सब परिवार सहित उसमें सम्मिलित हों। तत्पश्चात एक विद्वान का प्रभावशाली उद्बोधन रखा जाये। इसके पश्चात् एक रैली के रूप में सभी अपने क्षेत्र के बाजारों, गलियों में जलूस निकालें जिसमें हाथों में ओ३म् के ध्वज व बैनर आदि लेकर अधिक से अधिक लोग चलें तथा नारों और जयघोष से सारे क्षेत्र को गुंजाते रहें। इसके साथ ही ज्वलन्त समस्याओं तथा सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध बैनर एवं मोटो हों तथा नारे लगाते हुए सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध जन-जागरण तथा इनसे बचने के उपाय भी बताते चलें। किसी एक स्थान पर बाजार के चौराहे या पार्क आदि में एकत्र होकर अपने पर्व और सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध व्याख्यान हों। अपने पर्वों को मनाने के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन लाने का उद्देश्य भी रखा जाये। बुराईयों से त्रस्त लोगों को लगे कि आर्य समाज हमारी अपनी संस्था है और यह हमारे साथ है। समाज में एक सन्देश जाना चाहिए कि आर्य समाज अन्याय व बुराईयों के विरुद्ध खड़ा हो गया है। इन सब व्यवस्थाओं को सुचारू ढंग से चलाने के लिए आर्यवीर दल, आर्य युवक परिषद् तथा आर्य युवक समाज के नव युवकों को जिम्मेदारी सौंपनी चाहिए। हमें प्रयास करना चाहिए कि यज्ञ सहित समस्त कार्यक्रम आर्य समाज की चार दीवारी से बाहर निकल कर किये जायें। विचार कीजिए यदि एक ही दिन सारे देश में, देश के हर शहर में और शहर के प्रत्येक क्षेत्र में तथा गावों में इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित हों तो कोई कारण नहीं है कि लोग आर्य समाज से प्रभावित न हों और इसके साथ ही सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध आम लोगों की एकजुटता न हो।

2. वेद प्रचार सप्ताह, वार्षिकोत्सव एवं अन्य विशेष अवसरों पर आर्य समाजों में प्रभावशाली कार्यक्रम आयोजित किये जायें और उन कार्यक्रमों में क्षेत्रीय नेताओं को अवश्य आमंत्रित करें तथा प्रात:काल प्रभातफेरी अवश्य निकालें।

3. देश की स्वतन्त्रता तथा आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में जिन क्रांतिकारियों और महापुरुषों ने अपना जीवन बलिदान किया है ऐसे व्यक्तियों के बलिदान दिवस पर राष्ट्रक्षा सम्मेलन का आयोजन करें और जोरदार जुलूस निकालकर युवाओं में क्रांति के बीज बोयें। उनसे सम्बन्धित पुस्तकें तथा ट्रैक्ट आदि भी वितरित करें जिससे उनके प्रेरणादायी जीवन की जानकारी आमजनों को हो सके।

4. महिला दिवस पर 8 मार्च को कन्या भ्रूण हत्या, महिला उत्पीड़न के विरुद्ध झण्डे-बैनर लेकर जुलूस निकालें जिसमें महिलाओं की शेष पृष्ठ 12 पर

सम्पादक - प्रो. विट्ठलराव आर्य

अपराजेय योद्धा महर्षि दयानन्द

– डॉ. रघुवीर वेदालंकार

दयानन्द केवल धर्मोपदेष्टा न था, न ही केवल समाज सुधारक या वेद प्रचारक था। दयानन्द एक संग्राम का योद्धा था। वह संग्राम भी विचित्र था एक ओर पूरा आर्यावर्त, उनके दिग्गज विद्वान? तो दूसरी ओर अकेला दयानन्द।।

इतना ही नहीं, वह ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध भी लड़ा। उसने राजनैतिक मोर्चा भी सम्भाला। अपने लेखों एवं भाषणों में सर्वदा ब्रिटिश शासन की समाप्ति की बात कही। न केवल कही ही, अपितु 1857 के स्वातन्त्र्य समर में क्रियात्मक योगदान भी गुप्त रूप से दिया, ऐसा भी कहा जाता है। यह गलत भी नहीं है क्योंकि दयानन्द का गुरु तो सचमुच क्रांतिपुंज ही था। वह नाम से ही प्रज्ञाचक्षु नहीं था अपितु अपनी विमलप्रज्ञा के द्वारा 80 वर्ष का वृद्ध होने पर भी राजाओं-महाराजाओं में अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकने के बीज बो रहा था। साथ ही वह आर्य विद्या का उद्धारक तथा व्याकरण का सूर्य भी था। दयानन्द में उसके गुरु की ये तीनों ही विशेषताएँ समाविष्ट हो गई थीं।

गुरुवर विरजानन्द की भांति ही दयानन्द भी क्रांति दूत था। वह वीरत्व की साक्षात मूर्ति था। वह परम ईश्वर विश्वासी था तथा सत्य एवं ब्रह्मचर्य ने तो मानो साक्षात् दयानन्द के रूप में ही शरीर धारण कर लिया था। वह परम योगी भी था। इन गुणों के आधार पर ही वह, जीवन संग्राम में अकेला ही डटा रहा। उसके उक्त गुण ही उसकी सेना थे। इनके बल पर ही उसने संग्राम का चहुं ओर मोर्चा खोल दिया, विजय शंख फूंक दिया।

यह संसार युद्ध स्थली ही है। बड़े-बड़े युद्ध राज्यों की प्राप्ति के लिए ही किये जाते हैं। महाभारत के धर्मयुद्ध में भी भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कहा था –

'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।'

अर्थात् युद्ध में मरने पर तुम्हें स्वर्ग मिलेगा तथा विजयी होने पर राज्य की प्राप्ति होगी। दयानन्द के सामने ऐसा कोई प्रलोभन न था। उसने तो इस युद्ध के लिए अपने मोक्ष सुख तक को भी छोड़ दिया था। दयानन्द का युद्ध सत्य के प्रचारार्थ था, आर्य विद्या के प्रचारार्थ था तथा पाखण्ड के गढ़ को ध्वस्त करने के लिए था इसीलिए उसने अपने लेखन सर्वस्व पुस्तक का नाम सत्य-अर्थ-प्रकाश 'सत्यार्थ प्रकाश' रखा।

युद्ध में दो सेनाएँ आमने-सामने होती हैं, किन्तु यहाँ तो एक ओर पूरा भारत, उसमें फैले विविध मत-मतान्तर, मठाधीश, दिग्गज विद्वान्, धर्म के नाम से प्रचलित विविध पाखण्ड एवं पाखण्डी थे तो दूसरी ओर दयानन्द अकेला ही था। इतना ही नहीं, अपितु धर्म के नाम पर सुदृढ़ ईसाई तथा मुस्लिम सम्प्रदाय भी उसके विरोध में थे।

अंग्रेजी सरकार दयानन्द की स्वदेश भक्ति एवं अंग्रेजी राज्य के विरोध के कारण उसे बागी विद्रोही घोषित कर ही चुकीं थी। दयानन्द ने इन सबका मुकाबला अकेले ही किया था। उसने लिखकर, बोलकर तथा क्रियात्मक रूप में भी इन सबका सामना किया।

वह सर्वप्रथम व्यक्ति था जिसने अंग्रेजी न्याय व्यवस्था पर भी प्रश्न उठाया था कि यदि कोई गोरा काले (भारतीय) को मार दे तो उसे उचित दण्ड नहीं दिया जाता। दयानन्द ने सरकार के नमक कानून का भी विरोध किया था कि गरीब जनता पर नमक टैक्स लगाना उचित नहीं। दयानन्द ने धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया, उन्हें जड़ से उखाड़ने का यत्न किया।

इस महासमर में, दयानन्द के हाथ में एक ही शस्त्र था तथा वह था वेद। यही उसका सुदर्शन चक्र था। सामने कोई भी शत्रु टिक नहीं सकता था। इसी प्रकार वेदपाणि दयानन्द के सामने कोई भी नहीं टिक पाया। उसका यह सुदर्शन चक्र अजेय था। भारतीय जनता यहाँ तक कि धुरन्धर विद्वान भी इसे भूल चुके थे। इस पर धूल की पर्तें जम गई थीं तथा कहा जा रहा था कि वेदों को तो शंखासुर चुरा कर ले गया। दयानन्द ने तभी अपने झोले में से वेद की पोथी दिखला कर कहा कि – 'तुम्हारे आलस्य रूपी शंखासुर का वध करके मैंने ये वेद जर्मनी से मंगाया है।'

भारत की यह निधि विदेश पहुंच गई थी। जहाँ पर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उसकी बखिया उधेड़ी जा रही थी। इस वेद विद्या पर नाना प्रकार के आक्षेप किये जा रहे थे। यथा वेद लम्बे समय तक संग्रह किये गये गड़रियों के प्रेमालाप ही हैं। इनमें सुरापान-मांस भक्षण बहुदेववाद तथा यज्ञों में गोवध आदि का विधान है। दयानन्द के सामने भी यह सब कुछ आया किन्तु वह सामान्य मनुष्य नहीं था। वह एक ऋषि था, उसके मेधा बुद्धि थीं। यास्क कहते हैं – **ऋषयो दर्शनात्। स्तोमान् ददर्श इत्यौप मन्यवः।** अर्थात् तत्ववेत्ता को ऋषि कहते हैं। सामान्य व्यक्ति तो किसी भी पदार्थ या घटना को उपरी सतह तक ही देखता है। किन्तु ऋषि उसके वास्तविक परोक्ष स्वरूप को भी पहचान लेता है। वेद मंत्रों के वास्तविक अर्थों को भी, ऋषि बुद्धि थी, तभी तो उसने धर्म तथा ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को जाना। उसने यह भी समझ लिया कि वेद विद्या के लोप होने से ही यह सब कुछ पाखण्ड, अनाचार, अत्याचार तथा विविध प्रकार के भ्रम जनता में फैल रहे हैं। उसने देखा कि – 'वेदों के वास्तविक अर्थ तथा वेदों का सच्चा स्वरूप वह नहीं है जो कि सायणाचार्य आदि भारतीय तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने प्रस्तुत किया है।' दयानन्द ने वेदों को ऋषियों पर सृष्टि के आदि में प्रकट होने वाला ज्ञान कहा। उसने घोषणा की कि वेद सभी सत्य विद्याओं की पुस्तक है, उनमें ज्ञान-विज्ञान भरा है। तथा वे व्यक्ति सर्वविध के लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति करने वाले हैं।

योद्धा दयानन्द के युद्ध के कई क्षेत्र थे। वह अकेला ही इन सभी मोर्चों पर लड़ा तथा विजयी रहा। धार्मिक पाखण्ड विनाश के लिए उसने हरिद्वार में पाखण्ड-खण्डिनी पताका गाड़ दी। नया नाम था तथा नया ही काम था। जो एक अकेला कौपीनधारी दयानन्द नामक साधु कर रहा था। इससे पहले किसी ने भी ऐसा नहीं सुना था।

उसने सामाजिक क्षेत्र में प्रस्तुत कुरीतियों पर भी प्रहार किया। अछूतों को भी आर्य कहा। स्त्री तथा शूद्रों के लिए शिक्षा तथा वेद के द्वार खोले। स्वामी जी की इस दूर दृष्टि पर चकित होकर तब सत्यव्रत सामश्रमी नामक वेद के विद्वान ने कहा था – 'शूद्रस्य वेदाधिकारे साक्षाद् वेदवचनमपि प्रदर्शितं स्वामीदयानन्देन अर्थात् शूद्रों के वेदाधिकार में स्वामी दयानन्द ने साक्षात् वेद मंत्र 'यथेमां वाचं कल्याणी आवदानि जनेभ्या' भी उपस्थित कर दिया। इससे पूर्व शंकराचार्य से लेकर तब तक के किसी भी विद्वान का ध्यान इस मंत्र की ओर नहीं गया था। यही अवस्था स्त्री शिक्षा एवं उनके वेदाधिकार की थी। वेद तो क्या स्त्रियों को सामान्य शिक्षा का भी अकिार नहीं था। दयानन्द ने गार्गी घोषा अपाला आदि का उदाहरण देकर कहा कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ही मन्त्रों की द्रष्टी ऋषिकाएं होती थीं। इस विषय में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र लिखते हैं कि – 'स्त्रियों को दयानन्द का चिर कृतज्ञ रहना चाहिए कि उसने स्त्रियों की मुक्ति का द्वार खोल दिया।'

इस सबके साथ दयानन्द ने उस प्रबल आंधी से भी लोहा लिया जो सम्पूर्ण भारत को अपनी चपेट में ले रही थीं। वह आंधी ईसाईयत, इस्लाम तथा पश्चिमी सभ्यता की थीं। क्रांतिकारी लाजपतराय के पिता नमाज पढ़ते थे, रोजे रखते थे तथा इस्लाम स्वीकार करने मस्जिद में जा भी पहुंचे थे किन्तु बच गये। ईसाई प्रचारक हिन्दू धर्म की कमियाँ निकाल कर लोगों को धड़ाधड़ ईसाई बना रहे थे। दूसरी ओर, पश्चिमी सभ्यता भारत में सुरसा के मुख की भांति फैलती जा रही थी। दयानन्द इन आंधियों के सामने न केवल डटा ही, अपितु उसने इनकी गति को धीमा भी कर दिया।

इस विषय में पीर मुहम्मद यूनिस नामक मुस्लिम विद्वान लिखते हैं – ''ईसाईयत और पश्चिमी सभ्यता के मुद्रक हमलों में हिन्दी स्तुतियों को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के सिर बांधने का सौभाग्य प्राप्त हो तो स्वामी दयानन्द जी की ओर इशारा किया जा सकता है।''

अतीत को देखें तो पता चलता है कि – बड़े-बड़े समाज सुधारक तथा धर्म प्रचारक राज्य का आश्रय लेकर ही आगे बढ़ते हैं। यथा महात्मा बुद्ध तो स्वयं एक राजकुमार ही थे इस कारण भी उन्हें अपने अभियान में पर्याप्त सफलता मिली। इसके पश्चात् सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार करके अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भेजा। शंकराचार्य को सुघन्ना राजा ने बौद्ध मत के निराकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जिससे बौद्ध धर्म के स्थान पर अद्वैतमत की स्थापना हो गयी। मुहम्मद तो इस्लाम के प्रचारार्थ स्वयं हाथ में तलवार लेकर लड़े थे तथा उन्होंने इसे जेहाद धर्मयुद्ध घोषित किया था। अंग्रेजी काल में भारत में ईसायत के प्रचार-प्रसार में अंग्रेजी राज्य का पर्याप्त सहयोग एवं योगदान रहा।

महर्षि दयानन्द को इस प्रकार का राज्याश्रय प्राप्त नहीं था। इतना ही नहीं अपितु अनेक राजा तो महर्षि दयानन्द के कार्य में विघ्न उपस्थित करते थे तथा उनके प्राण लेने पर भी उतारू रहते थे। राव राजा तेज सिंह ने स्वामी जी पर अपनी तलवार से वार किया ही था जिसे स्वामी जी ने निष्फल कर दिया था।

काशी शास्त्रार्थ में काशी राज स्वयं शास्त्रार्थ के मध्यस्थ थे तथा उन्होंने ही पक्षपात से काशी के पण्डितों को विजयी घोषित किया क्योंकि राजा स्वयं ही मूर्तिपूजक थे। इस प्रकार, दयानन्द अपने प्रचार में राज्याश्रय तो क्या जनता के समर्थन से भी प्रायः अछूते ही रहे। पुनरपि उस वीर योद्धा ने सभी मोर्चों पर अपना संग्राम जारी रखा। उस निर्भीक योद्धा ने हुंकार भरी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कि स्वदेशी राज्य ही सर्वोपरि है। अतः अंग्रेज जल्दी से जल्दी भारत को छोड़ दें। इतना ही नहीं अपितु उसने तो भारत के चक्रवर्ती साम्राज्य की भी कल्पना की।

दयानन्द ने कहा वेदज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में परमेश्वर की ओर से ऋषियों का दिया गया ज्ञान है। अतः स्वतः प्रमाण, पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। इस प्रकार उस निर्भीक योद्धा ने इन सभी मोर्चों पर अंगद के समान ऐसा पैर जमाया कि जिसे हटाने का साहस किसी ने नहीं किया।

– बी-266, सरस्वती विहार, दिल्ली-34

तमसो मा ज्योतिर्गमय

– डॉ. सुरेन्द्र सिंह कादियाण

दीपावली पर्व से महर्षि दयानन्द सरस्वती की अमिट स्मृति जुड़ी हुई है। इसी दिन अन्धकार से लड़ते–लड़ते ऋषिवर ने प्राणों का त्याग किया था और उनका आत्मा दीपावली के दिव्य प्रकाश में ही कहीं विलुप्त हो गया था। बाहर के अन्धकार को तब तक नहीं मिटाया जा सकता जब तक कि मनुष्य अपने भीतर के अन्धकार, तमस और कलुषता को नहीं मिटाता। अन्तर्जगत् का परिशोधन होने पर ही मनुष्य में वह स्फुर्ति, क्षमता, चेतना, निर्भयता, स्थिरता आती है जो बाहर के अंधकार को मिटाने के लिए अत्यावश्यक है। जिसे इच्छा–शक्ति कहा जाता है, संकल्प की सात्विक अग्नि कहा जाता है, तीसरे नेत्र का खुलना कहा जाता है अथवा छठी इन्द्री जगने की बात कही जाती है तो ये सब परिशोधित अन्तर्जगत की ही स्वाभाविक प्रक्रियाएँ हैं। मनुष्य इस स्थिति को प्राप्त करके ही आत्म प्रेरणा से समाज सेवा के पथ का पथिक बनता है।

दीपावली प्रकाश से अंधकार को मिटाने वाला पर्व है। यह एक प्रतीक है जिसका अर्थ है भीतर और बाहर के अज्ञान रूपी अंधकार को ज्ञान रूपी प्रकाश से मिटाने का अहर्निश प्रयास करना। भीतर और बाहर के अंधकार से क्या तात्पर्य है? भीतर के अंधकार का अर्थ काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, हिंसा, असत्य, अन्याय आदि दुर्गणों से है जो मनुष्य के मन, वचन, कर्म को कलुषित किये रखते हैं। बाहर के अंधकार का अर्थ साम्प्रदायिकता, जातपात, भ्रष्टाचार, नशाखोरी, पाखण्ड, शोषण, नारी उत्पीड़न, असमानता, क्षेत्रीयतावाद, भाषावाद, दहेज प्रथा, बाल–विवाह, असमानता, मिलावटखोरी, बलात्कार, अपहरण, आतंकवाद, अपराधवृत्ति, सती–प्रथा, देवदासी प्रथा, बाल–मजदूरी, बन्धुआ मजदूरी, तस्करी आदि सामाजिक बुराइयों से है जो समाज को भयभीत, आतंकित, विश्रृंखलित, अव्यवस्थित, शोषित और प्रदूषित किये रखती हैं।

दीपावली पर्व से महर्षि दयानन्द सरस्वती की अमिट स्मृति जुड़ी हुई है। इसी दिन अन्धकार से लड़ते–लड़ते ऋषिवर ने प्राणों का त्याग किया था और उनका आत्मा दीपावली के दिव्य प्रकाश में ही कहीं विलुप्त हो गया था। बाहर के अन्धकार को तब तक नहीं मिटाया जा सकता जब तक कि मनुष्य अपने भीतर के अन्धकार, तमस और कलुषता को नहीं मिटाता। अन्तर्जगत् का परिशोधन होने पर ही मनुष्य में वह स्फुर्ति, क्षमता, चेतना, निर्भयता, स्थिरता आती है जो बाहर के अंधकार को मिटाने के लिए अत्यावश्यक है। जिसे इच्छा–शक्ति कहा जाता है, संकल्प की सात्विक अग्नि कहा जाता है, तीसरे नेत्र का खुलना कहा जाता है अथवा छठी इन्द्री जगने की बात कही जाती है तो ये सब परिशोधित अन्तर्जगत की ही स्वाभाविक प्रक्रियाएँ हैं। मनुष्य इस स्थिति को प्राप्त करके ही आत्म प्रेरणा से समाज सेवा के पथ का पथिक बनता है। आज का समाज विषमताओं से परिपूर्ण है, भौतिकवादी और बाजरवादी सोच के कारण मनुष्य जीवन में धन ने सर्वोपरि स्थिति प्राप्त कर ली है, रिश्तों का अब विशेष महत्व नहीं रहा है, धर्म और शिक्षा जैसे बुनियादी व पवित्रतम क्षेत्रों में भी आज पैसे का बोलबाला है। यह दयनीय स्थिति मनुष्य के अन्तर्जगत की कलुषता का प्रतिबिम्ब मानी जा सकती है।

समाज–सुधार का कोई ठोस कार्यक्रम लेकर कोई भी संगठन आज सक्रिय नहीं है। सक्रियता यदि कहीं नज़र आ भी रही है तो इसकी आड़ में धन अर्जित करने की मंशा है। देश भर में समाज–सेवा के नाम पर एन०जी०ओ० बने हुए हैं जो बेरहमी से सरकारी धन पर हाथ साफ कर रहे हैं। अधिकांश एन०जी०ओ० सत्तारूढ़ पार्टी के चहेतों द्वारा स्थापित होते हैं जो कमीशन के आधार पर अर्थात् बन्दरबांट के आधार पर काम करते हैं। काम न करने वाले अर्थात् फर्जी एन०जी०ओ० की भी भरमार कम नहीं है। घर के बन्द दरवाजे पर एक तख्ती लटका कर राजकोष से धन वसूला जाता है। जो समाज–सेवी संगठन वर्षों, दशकों तथा शताब्दी से काम करते आ रहे हैं सरकारें उन्हें घास नहीं डालतीं क्योंकि उनका काम करने का ढंग दूसरा है, उनके मानदण्ड दूसरे हैं, उनके दृष्टिकोण दूसरे हैं वे राजकोष पर बोझ बनने की मानसिकता से मुक्त हैं। ये संगठन मिशनरी भावना से काम करते हैं न कि प्रदर्शन करने अथवा धन बटोरने की गर्ज से। ये संगठन समाज की बुनियाद को मजबूत करने का काम करते हैं, सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध सतत अभियान चलाते हैं और कई बार इस संघर्ष में उसके अनुयायी अपने जीवन का बलिदान तक दे देते हैं। लेकिन अब मिशनरी भावना से चलने वाले इन संगठनों की बुनियाद भी हिलने लगी है क्योंकि इनमें भी बाजारवादी सोच के लोग आ घुसे हैं। शहद पर मक्खियों का भिनभिनाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। मक्खियों की संख्या जब किसी समाजसेवी संगठन में बढ़ जाती है तो भीतर ही भीतर अनेक चुनौतियाँ उस संगठन को मिलने लगती हैं। अनेक पुराने समाजेसवी संगठन इन चुनौतियों के विषदंश आज झेल रहे हैं जिससे उनकी गतिविधियाँ ठप्प हो रही हैं और उनके यश में निरन्तर ह्रास हो रहा है। इन मक्खियों के नियंत्रण व प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था न होने से समस्या और जटिल बनती जा रही है। आर्यसमाज भी इन समाज सेवी संगठनों में से एक है।

दीपावली उल्लास का पर्व है, मंगल का पर्व है, लक्ष्मी का पर्व है लेकिन आर्यों के लिए यह पर्व चिन्ता व चिन्तन का पर्व रहा है। ३० अक्तूबर सन् १८८३ की दीपावली को समूचा भारत ज्योति पर्व मना रहा था लेकिन अजमेर के आर्य–जन ऋषि दयानन्द के मृतक शरीर को घेरे बैठे थे। आज के ही दिन सायं छह बजे उन्होंने प्राणों का त्याग किया था अतः अन्त्येष्टि अगले दिन होनी थी। भारत के ज्ञानलोक का सूर्य अस्ताचल में चिर निद्रा में पड़ा था। आर्य जन अपने को असहाय अनुभव कर रहे थे। अपना कोई उत्तराधिकारी छोड़ कर वे नहीं गये थे। चिन्ता का मुख्य कारण यही था कि अब आर्य समाज की बागडोर कौन संभालेगा, उनके मिशन को एक व्यवस्थित रूप देकर कौन चलायेगा। लेकिन इस शोकमय समय में आर्यों के पास एक सम्बल था, एक सहारा था जिससे इस चिन्ता का सहज समाधान निकालना सम्भव हुआ। यह था आर्यों का आत्म–बल, अन्तर्जगत की निश्च्छल एवं प्राणवान् शक्ति, एक परिशोधित अन्तर्जगत जो सद्‌गुणों से जाज्वलयमान् था। तब के लोग समाजसेवा को पुण्य कर्म और धर्म मानते थे आज के लोगों की तरह व्यापार या ऐषणाओं का स्रोत नहीं। ऋषिवर का निधन यदि आज हुआ होता तो उनके चेले आर्य समाज की एक–एक ईंट बेच खाते। लेकिन वह युग दूसरा था, ऋषि के निधन ने आर्यों के मन में एक तड़प, एक जज्बा, एक सनक ऐसी भर दी कि देश–विदेश में आर्य समाज का फैलाब तेज गति से होने लगा। शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हँसराज के नेतृत्व में दो महान् आन्दोलन अलग–अलग चले। शास्त्रार्थों की धूम मची, वेद प्रचार की गति बढ़ी, साहित्य प्रकाशन क्षेत्र में क्रान्ति आई, शुद्धि आन्दोलन का सुदर्शन चक्र घूमा, बलिदान देने की होड़ लगी, स्वाधीनता आन्दोलन की अग्नि प्रचण्ड की, हैदराबाद आन्दोलन ने तो सबको चकित कर दिया, समाज सेवा के अनेक प्रकल्प स्थापित किये गये। इस प्रकार आर्य समाज ने अपने को न केवल पुनर्स्थापित किया बल्कि एक आदर्श संस्था के रूप में अपने को अध्यात्म, योग, धर्म, समाज सेवा, शिक्षा, स्वाधीनता, आन्दोलन आदि क्षेत्रों में स्थापित किया, यश अर्जित किया।

आज स्थिति इसलिए विकट है कि दीपावली को आर्यों ने उल्लास पर्व मान लिया है, चिन्तन पर्व नहीं। यदि चिन्तन पर्व माना होता तो वे समस्याएँ कदाचित पैदा न होती जिनसे वह जूझ रहा है। तमसो मा ज्योतिर्गमय का उच्चारण तो यज्ञवेदी पर प्रतिदिन किया जाता है लेकिन भीतर और बाहर के तमस को मिटाने की इच्छा–शक्ति अब जाग्रत नहीं होती। अब तो तमस को जुटा कर, इसे अस्त्र–शस्त्र बनाकर ही विरोधी को परास्त करने के मंसूबे बांधे जाते हैं। झूठ की खड़ग से सत्यवक्ताओं की गरदन कलम करने के षडयन्त्र रचे जाते हैं। मिशन नहीं जब कुर्सी जहन पर हावी हो जाती है तो ऐसा ही होता है। स्वार्थ व्यक्ति को अन्धा कर देता है। इस अन्धेपन से व्यक्ति मुक्त हो सकता है लेकिन जब उसका समूह, उसका ग्रुप, उसका धड़ा, उसका वर्ग ही अन्धेपन का शिकार हो जाये तब आँखें होते हुए भी मनुष्य अन्धेपन का शिकार हो जाता है और चाहने पर, लाख कोशिश करने पर भी वह इससे मुक्त नहीं हो पाता। आर्यसमाज में गुट बनते हैं, फिर ये गुट उप–गुटों में विभाजित होते हैं, फिर इन उप–गुटों में लेन–देन होता है, पद बंटते हैं अैर समझौते हो जाते है। कोई नैतिकता, कोई सिद्धान्त, कोई मिशन इन्हें आपस में नहीं बांधता बल्कि बांधते हैं स्वार्थ और पद। ऐसे गठबन्धन फिर शीघ्र ही विभाजन का शिकार बनते हैं, और बिना कोई उद्देश्य प्राप्त किये धराशायी हो जाते हैं। जब भीतर अन्धकार हो, तमस हो, स्वार्थ हो तो बाहर उससे कैसे बचा जा सकता है?

आज के इस यक्ष प्रश्न को, दीपावली को चिन्तन पर्व के रूप में मना कर यदि हल कर लिया जाये तो ऋषि दयानन्द के मिशन को अब भी संभाला जा सकता है, आगे बढ़ाया जा सकता। जरूरत अपने अन्तर्जगत् के परिशोधन की है। यह कार्य यदि ईमानदारी से हो जाये तो बाहर की कोई समस्या रहेगी ही नहीं। किसी गुट विशेष का घटक बन कर अन्तर्जगत् का परिशोधन सम्भव नहीं क्योंकि गुटबाजी खुद में एक ला–ईलाज बीमारी है। जब तक सच बोलने की ताकत हमारे अन्दर पैदा नहीं होगी तब तक हम किसी भी समस्या के समाधान में सहभागी नहीं बन सकेंगे। हमारी प्रतिबद्धता यदि ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के प्रति है तो गुटबाजी हमें प्रभावित नहीं कर सकती। फिर हमें न तो रणनीति बनाने की जरूरत रहेगी, न कोर्टों पर आश्रित होने की जरूरत पड़ेगी और न किसी नेतृत्व के चरित्रहनन के लिए कोई सामूहिक अभियान चलाने की आवश्यकता महसूस होगी। सही दिशा में बढ़ने वाले और सही काम करने वालों के विरुद्ध भी यदि अभियान चलेंगे तो एक स्थिति ऐसी आ जायेगी कि समूचा संगठन ही एक दिन जमींदोज होकर रह जायेगा। दीपावली के चिन्तन–पर्व पर क्या हम इन मौलिक व आधारभूत बातों पर अन्तर्मुखी होकर चिन्तन कर पायेंगे? ईश्वर हम सबको सद्‌बुद्धि प्रदान करे जिससे कि स्थायी समाधान का कोई रास्ता निकल आये और ऋषिवर का मिशन एक बार फिर अपने जलवे बिखेरने लगे। ●

डोली बना दी तूने

– प्रो. सारस्वत मोहन 'मनीषी'

एक जंगल में नई बस्ती बसा दी तूने।
वक्त पत्थर पर सफल जौक लगा दी तूने।।
    लोग माने या न मानें था करिश्मा, कोई,
    अर्थियाँ जितनी चली डोली बना दी तूने।
सच तो ये है कि किया काम निराला ऐसा,
आग पानी में दयानन्द लगा दी तूने।
    रात किया दिन को, उड़े ऐसे नशे में नफरत,
    जिसका टूटे न नशा ऐसी पिला दी तूने।
जिनके शासन का न छिपता था कभी सूर्य जहाँ,
चलके गुजरात से कुर्सी, वो हिला दी तूने।
    दूसरा कृष्ण तुम्हें कहने को मन करता है,
    बांसुरी वेद की दुनिया को सुना दी तूने।
ढोंग के दौड़ गये, जितने थे रावण, बसते,
घोर अज्ञान की लंका ही जला दी तूने।
    चाँद, सूरज व सितारे थे कभी कैद जहाँ,
    ऐसे अंबर में पुनः धूप उगा दी तूने।
जिनके पांवों में न पायल थी न बिंदिया मुख पर,
ऐसी अबलाओं की फिर मांग सजा दी तूने।
    ढूंढा इतिहास को देखा न मिला तुम जैसा,
    अपने कातिल की भी जीने की दुआ की तूने।
सत्य के दीप सदा दिल में जलाएं रखकर
मरते–मरते भी दीवाली ही दिखा दी तूने।
    भूल पायेंगे न सदियों ओ मनीषी! तुमको,
    गर्दनें गर्व की पैरों में झुका दी तूने।

भारतीय समाज के सामाजिक परिवर्तन और समाज सुधार में–
स्वामी दयानन्द का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

– डॉ० चन्द्रपाल सिंह

सामाजिक परिवर्तन और समाज सुधारः–

परिवर्तन समाज का एक अनिवार्य नियम है। आदिकाल से ही समाज में परिवर्तन होते रहे हैं, चाहे मनुष्य ने उन हो रहे परिवर्तनों के प्रति संवेदनशीलता दिखाई या नहीं। भारतीय समाज भी परिवर्तन के इस नियम से अछूता नहीं रहा, परन्तु शताब्दियों की राजनैतिक पराधीनता के कारण इन परिवर्तनों के प्रति उसमें कुछ असंवेदनशीलता आ गई। इसके परिणामस्वरूप भारतवासियों को दुर्बलता, दरिद्रता, हीनभावना तथा अन्य विकारों का शिकार बनना पड़ा। राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक उत्पीड़न एवं आत्मबोध के अभाव ने भारतीय समाज में बहुत–सी ऐसी कुण्ठाओं को जन्म दिया जिनका सहज उन्मूलन सम्भव नहीं था।

विदेशी शासन से, चाहे वह मुस्लिम रहा हो या ब्रिटिश, उत्पन्न पराजय–भाव ने भारत के विशाल हिन्दू समाज के धार्मिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों को अपूरणीय क्षति पहुँचायी। सहस्राब्दियों पूर्व के वैदिक, औपनिषदिक, रामायण तथा महाभारतकालीन समाज द्वारा दी गयी स्वस्थ चिन्तन व संस्कार युक्त परम्परा अतीत की वस्तु बनकर रह गयी जो केवल पुस्तकों तथा कथाओं तक सीमित रही। भारत की सामाजिक पृष्ठभूमि पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा तथा धर्म और समाज के बीच असन्तुलन उत्पन्न होने लगा। इस स्थिति का समाज के कुछ प्रभावशाली लोगों ने अनुचित रूप से उपयोग किया तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड, नैतिकता के नाम पर मिथ्या अन्धविश्वास, श्रम तथा कार्य–विभाजन के नाम पर विशेष वर्गों के शोषण का प्रचार किया। इसके परिणामस्वरूप समाज में सर्वत्र संकीर्णता, अनुदारता तथा जड़ता फैलने लगी जिसने बाल–विवाह, नारी–स्वाधीनता का अपहरण विधवाओं पर अत्याचार, ऊँच–नीच की भावना पर आधारित छूत–अछूत में विभाजन, बहु–विवाह प्रचलन, दलित व निम्न वर्ग पर अत्याचार, मांसाहार व मद्य–प्रयोग को धर्म व संस्कृति से जोड़ना आदि सामाजिक बुराईयों को जन्म दिया। ये सामाजिक बुराईयाँ व कुरीतियाँ भारतीय समाज में घुन की तरह लगीं तथा किसी समय के सुदृढ़, स्वस्थ व प्रगतिशील भारतीय समाज को इतना जर्जर व खोखला बना दिया कि वह विदेशी आक्रमण तथा परकीय अत्याचारों का सामना करने में असमर्थ हो गया। भारतीय समाज की इस अधोगति तथा सामाजिक विघटन के लिए बाह्य शक्तियों के साथ–साथ हिन्दू समाज में आये मिथ्या विश्वास, कुरीतियाँ व कुप्रथायें, रूढ़िग्रस्त व जड़ विश्वास भी जिम्मेदार थे! यह किसी समाज की वह अवस्था थी जहाँ उसमें परिवर्तन लाने के लिए बड़े स्तर पर समुदाय के मौलिक मूल्यों व सामाजिक संस्थाओं को प्रभावित करना आवश्यक हो गया था। समाज के पतन को रोकने के लिए समस्त समुदाय की जीवनधारा में परिवर्तन, व्यक्तियों एवं समूहों की आवश्यकताओं को जानकर उनका अध्ययन व विश्लेषण करके उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उनके सर्वांगीण विकास में सहायता करना ही समाज–सुधार का उद्देश्य है तथा समाज–सुधार की एक वैज्ञानिक विधि है। स्वामी दयानन्द ने एक धर्म–संशोधक व धर्म–व्याख्याता के साथ–साथ एक समाजशास्त्री के रूप में भारतीय समाज की इस अवस्था को पढ़ा, जाना और उसे सुधारने का प्रयत्न किया।

समाज-सुधार क्या है?

समाज–सुधार सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख अभिकरण है जिससे समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, बुराईयों व कुरीतियों को समाप्त करने के लिए समाज को अज्ञानता व अन्धकार से बाहर निकालने का प्रयत्न किया जाता है। समाज–सुधार का मुख्य उद्देश्य समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाना है, एक ऐसा परिवर्तन जिससे समुदाय के मौलिक मूल्य व संस्थाएं प्रभावित होती हैं। समाज–सुधार द्वारा समस्त समुदाय की जीवन–धारा में परिवर्तन लाने के लिए आन्दोलन चलाए जाते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों व कुप्रथाओं को दूर कर सामाजिक व्यवस्था को वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल बनाना होता है जिससे समाज प्रगति कर सके।

स्वामी दयानन्द के समाज-सुधार में वैज्ञानिक आधार

भारतीय समाज में हो रहे नकारात्मक परिवर्तनों ने महर्षि दयानन्द को बहुत गहराई से प्रभावित किया। उन्होंने भारतीय समाज के धार्मिक दृष्टिकोण के साथ–साथ उसकी सामाजिक परिस्थितियों तथा एक साधारण व्यक्ति की व्यथाओं व परेशानियों का वैज्ञानिक अन्वेषण किया। इसीलिए स्वामी जी द्वारा किये गये समाज–सुधार चाहे वह नारी–उत्थान के विषय में हो या हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों व कुप्रथाओं अथवा मूर्तिपूजा या कर्मकाण्डों का खण्डन हो, सभी वैज्ञानिकता की कसौटी पर कसे गये। भारतीय समाज के पुनर्जागरण में स्वामी दयानन्द के योगदान में जहाँ धर्म–सुधार एक आधार था वहीं इस समाज व मनुष्य की सामाजिक मनःस्थितियों का वैज्ञानिक अध्ययन तथा सोच के द्वारा इसमें परिवर्तन लाने का एक महत्वपूर्ण प्रयत्न भी।

उन्नीसवीं सदी में ही भारतीय समाज की क्षति को रोकने के लिए स्वामी जी ने एक समाजशास्त्री की भूमिका निभाई तथा समाज को सशक्त बनाने का प्रयत्न किया। उनके समाज–सुधार–सम्बन्धी कार्य तत्वज्ञान और यथार्थता के सिद्धान्तों पर आधारित थे जिनमें मानव–समाज की छोटी से छोटी विकृति की ओर भी ध्यान दिया गया। शिवरात्रि के पर्व पर शिव प्रतिमा का चूहे द्वारा किये गये अपमान की एक साधारण प्रतीत होने वाली घटना ने न केवल स्वामी दयानन्द के जीवन को असाधारण मोड़ दिया अपितु भारत के धार्मिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक जगत् में क्रान्ति का सूत्रपात किया। स्वामी दयानन्द के हृदय में सुधारों की भावना का प्रारम्भ मूर्ति की सत्ता में अश्रद्धा होने से हुआ। यह ईश्वर–सम्बन्धी अशुद्ध विचारों के विषय में उनका पहला कुठाराघात था।

स्वामी जी के समाज–सुधार में एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि वे समाज में परिवर्तन लाने के लिए मनुष्य को अपनी बुद्धि, विवेकशक्ति तथा चिन्तन–प्रणाली का प्रयोग करने के लिए कहते थे तथा उसके लिए उसे उचित वातावरण भी देने का प्रयत्न करते थे। यह उनके प्रगतिशील विचारों तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रमाण है। यहाँ मैं १ जुलाई १८७७ को प्रकाशित 'बिरादरे हिन्द' में स्वामी जी के विषय में छपे एक लेख को उद्धृत करना चाहता हूँ जिसमें उनके उदार, सुसंस्कृत एवं प्रगतिशील विचारों को प्रस्तुत किया गया है– ''...... उनके विचार प्रायः उदार तथा अधिकांश विचार इस समय के विद्वतापूर्ण विचारों के अनुकूल हैं। मस्तिष्क उनका अत्यन्त प्रगतिशील प्रतीत होता है। इस व्यक्ति के हृदय में राष्ट्रीय सहानुभूति और राष्ट्रीय सुधार का बहुत बड़ा उत्साह स्पष्ट दिखाई देता है। धार्मिक सुधार की दृष्टि से यह व्यक्ति मूर्तिपूजा का बहुत बड़ा शत्रु है और उन लोगों में से है जो इन दिनों मूर्तिपूजा को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, इस व्यक्ति को इस समय का बहुत बड़ा मूर्तिभंजक कहें तो अनुचित न होगा। जहाँ तक धार्मिक सुधारों का प्रश्न है, ब्रह्म–समाज भी सिद्धान्त–रूप में मूर्तिपूजा को दूर करना और इस संसार में ईश्वरोपासना का प्रचार करना चाहता है। इसलिए उसका तो यह व्यक्ति एक देवदूत की भाँति सिद्ध होगा। इसकी जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। यह व्यक्ति केवल धार्मिक सुधार का ही अभिलाषी नहीं है, अपितु समस्त जातीय बुराईयों के सुधार को दृष्टि में रखता है, जैसे देश में फैल रहा बाल्यावस्था में विवाह आदि। वह स्त्रियों की शिक्षा और उनकी स्वतन्त्रता का विशेष रूप से इच्छुक है और उसकी यह भी सम्मति है कि जब तक उनमें शिक्षा न फैलेगी तब तक उन्हें अपनी कैद से छुटकारा प्राप्त न होगा, और तब तक इस देश में किसी स्पष्ट उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। सारांश यह है कि जाति से अविद्या और पक्षपात को दूर करना, विद्या का प्रचार करना और सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करना और उसे साधारण सभ्यता के रूप में लाकर एक श्रेष्ठ नमूना बनाने का यत्न करना, इस व्यक्ति का सामान्य और विशेष उद्देश्य है।''

– बाल-विवाह का वैज्ञानिक आधार पर विरोध

स्वामी जी के समाज–सुधार के कार्य उनके द्वारा समाज के गहरे अध्ययन पर आधारित थे। यह अध्ययन समाज की वास्तविक परिस्थितियों अर्थात् सत्य पर आधारित था और सत्य के विषय में उनके विचार बहुत स्पष्ट थे। अपनी प्रमुख कृति 'सत्यार्थप्रकाश' में स्वामी जी ने सत्य के विषय में कहा है कि जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना मेरे इस ग्रन्थ का प्रयोजन है। उन्होंने यह भी कहा है कि वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान पर असत्य और असत्य के स्थान पर सत्य का प्रकाशन करता है। परन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। बाल–विवाह जैसी कुप्रथा का विरोध उन्होंने उस समय की सामाजिक स्थितियों की यथार्थता को स्वीकारते हुए किया। उन्हें भली–भाँति ज्ञात था कि समाज का एक बड़ा वर्ग इस प्रथा के विरोध को उचित नहीं मानेगा, परन्तु मनुष्य के विकास में बाधक किसी भी प्रकार की प्रथा को वे स्वीकार नहीं कर सकते थे, क्योंकि वह सत्य के मार्ग में बाधक थी और मनुष्य के शरीर की संरचना और उसका विकास स्वामी दयानन्द ने आयुर्वेद के ग्रन्थों–चरक आदि से वैज्ञानिक आधार पर यह जान लिया था कि किस आयु में स्त्री, पुरुष में परिपक्वता आती है। इसलिए उनका दृढ़ विश्वास था कि बाल–विवाह जैसी कुप्रथायें स्वस्थ मनुष्य और स्वस्थ समाज के विकास में बाधक हैं। बाल–विवाह का विरोध करने के पीछे एक वैज्ञानिक आधार यह भी था कि मनुष्य में प्रजनन–क्षमता तथा प्रक्रिया यौवनावस्था (१२ वर्ष से १६ वर्ष) में चरम सीमा पर होती है और इस अवस्था में 'मनुष्य मानसिक व शारीरिक रूप से पूर्ण विकसित नहीं होता इसलिए उन्होंने स्त्री और पुरुष के विवाह की आयु उनके पूर्ण रूप से विकसित और मानसिक व शारीरिक रूप से परिपक्व हो जाने पर निश्चित की।

– अर्थशास्त्र पर आधारित गो-रक्षा

स्वामी दयानन्द के समाज–सुधार में गोधन की रक्षा तथा गोहत्या के विरुद्ध संघर्ष भी बहुत महत्वपूर्ण है। गोधन को स्वामी जी मनुष्य–जाति के लिए बहुत उपयोगी और जीवनदायी मानते थे। इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने गोधन के अर्थशास्त्र को समझाया। यह भी उनके समाज–सुधार का एक वैज्ञानिक आधार ही था जिसमें उन्होंने साधारण मनुष्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर एक सन्तुलित समाज के विकास का मार्ग बनाया। यह उस समय का एक आवश्यक सुधार–क्षेत्र था जिसमें समाज की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे अपने संसाधानों को सुरक्षित रखने और विकसित करने के लिए प्रेरित करना आपश्यक था।

– समग्र सुधार का आह्वान

स्वामी दयानन्द के चिन्तन और कार्यों में सतत गतिशीलता तथा प्रगतिशील विचारधारा स्पष्टरूप से दिखाई देती है। धार्मिक क्षेत्र व सामाजिक क्षेत्र के साथ–साथ उन्होंने राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में भी अपने समाकालीन समाज–सुधारकों की तुलना में अधिक प्रगतिशील विचार दिये। धार्मिक क्षेत्र में परिवर्तन लाना तो उनका लक्ष्य था ही, स्वदेश की हीन अवस्था से भी वे पूरी तरह परिचित थे। उनकी यह धारणा बन चुकी थी कि अंग्रेजी शासन में प्रचलित न्याय–प्रणाली दोषपूर्ण है। उनका दृढ़ विश्वास था कि प्राचीन काल में प्रचलित पंचायत–प्रणाली, जिसमें ग्राम को इकाई मानकर वहां निवासियों के आपसी वाद–विवादों को मिल बैठकर सुलझा लिया जाता है, ग्राम–पंचायत–व्यवस्था भारत जैसे ग्रामीण प्रधान देश के लिए अनुकूल है। ब्रिटिश राज्य की समाप्ति के पश्चात् भारत में स्थानीय स्तर पर जो पंचायत राज्य स्थापित किया गया उसका आधार वही प्राचीन पंचायत राज्य प्रणाली है जिसे स्वामी जी भारतीय स्थानीय स्वशासन के लिए उचित मानते थे। यह स्वामी दयानन्द का भारतीय समाज के विषय में गहन चिन्तन का प्रतीक है और भारतीय समाज की परिस्थितियों का एक वैज्ञानिक मूल्यांकन। संक्षेप में, महर्षि दयानन्द की विचारधारा एक प्रगतिशील विचारधारा थी और वे सत्य के अन्वेषक थे। उनका दृष्टिकोण व्यापक था, वे जीवन और समाज की पूर्ण व्याख्या करना चाहते थे और अपनी विचार क्रान्ति में सबको साथ लेकर चलना उनका ध्येय था, यही समाज–सुधार में महत्वपूर्ण तथा वैज्ञानिक तथ्य हैं जो स्वामी दयानन्द के समाज–सुधार में प्रमुख थे। अन्त में डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती द्वारा उद्धृत ये शब्द स्वामी जी के व्यक्तित्व व वैज्ञानिक सोच को और अधिक स्पष्ट करते हैं– ''यदि कोई दयानन्द के दृष्टिकोण को समझले तो यदि वह ईसाई है तो और भी अधिक अच्छा और ईमानदार ईसाई बन सकता है; हिन्दू है तो अच्छा हिन्दू बन सकता है; जैन, मुसलमान, सिक्ख, पारसी है तो अच्छा जैन, मुसलमान, सिक्ख और पारसी बन सकता है; यदि वह राजनीतिक और राष्ट्रवादी है तो दयानन्द के दृष्टिकोण को समझ लेने पर वह अपने क्षेत्र में अच्छा कार्यकर्त्ता बन सकता है, यदि वह समाजवादी और साम्यवादी है तो वह अच्छा समाजवादी या साम्यवादी बन सकता है; ब्राह्मण अच्छा ब्राह्मण, शूद्र अच्छा शूद्र बन सकता है।''

एम.टी.एच.-७, विश्वविद्यालय परिसर,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र-१३६११६

ऋषि की इच्छा पूर्ण करने का संकल्प लें

– डॉ. महेश विद्यालंकार

पर्व हमारी सांस्कृतिक ऐतिहासिक एवं सामाजिक जीवन की धरोहर है। पर्व जीवन और जगत में उत्साह, उल्लास, प्रेरणा तथा गति का संचार करते हैं। इनसे जीवन सुखमय, मधुमय व जाग्रत हो उठता है। इसलिए भारत में पर्वों का सम्बन्ध फसलों, ऋतुपरिवर्तन, ऐतिहासिक घटनाओं, महापुरुषों के जीवनों और बलिदानों से जोड़ दिया गया है। जिससे संसार को नवज्योति का प्रकाश मिलता रहे। मनीषियों ने पर्वों में आध्यात्म भाव और कर्मकाण्ड जोड़कर इन्हें अमरता प्रदान की है।

दीपावली का महत्व :– दीपावली पर्व अन्धकार से प्रकाश यात्रा का पर्व है। तमस पर प्रकाश की विजय का पर्व है दीपावली। अज्ञान से ज्ञान की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, अशांति से शांति की ओर, प्रकृति से परमात्मा की ओर, मृत्यु से जीवन की ओर चलने की प्रेरणा है दीपावली। जीवन में व्याप्त दुर्गुण, दुर्व्यसन, अज्ञान जनित दुःख व पापवृत्ति से छूटने का सन्देश लेकर आती है हर वर्ष दीपावली। अन्तस् में फैला अंधकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष अतृप्ति, अशांति आदि का आत्म चिन्तन करने का पर्व है दीपावली। दीपावली का दीपक यही सन्देश देता है जब तक हम अन्दर के अज्ञानरूपी अंधकार को नहीं मिटायेंगे, तब तक जीवन में सच्ची सुख शांति और आनन्द की प्राप्ति नहीं कर सकेंगे।

दीपावली और दयानन्द :– इस पर्व से ऋषि का गहरा सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। उसी प्रकार पर्व के दिन पुण्यात्मा दयानन्द ने संसार से महायात्रा की थी। उन्होंने इस वर्ष का प्रतिकार्थ सामने रखकर संसार को अपने व्यक्तित्व, कृतित्व एवं कृतियों से नवजीवनदायक प्रकाश का मार्ग दिखाया। वह इतिहास पुरुष अपने में दिव्य आलोकपुंज था। जो आजीवन संसार को मानवता का पाठ पढ़ाता रहा है। जो भूली भटकी हिन्दू जाति को सन्मार्ग दिखाता रहा। जो ईंट पत्थर, गाली जहर को पीता रहा और बदले में दया का भण्डार लुटा कर आनन्द पाता रहा हो, ऐसी दिव्यात्माएँ दुनियाँ में कभी–कभी ही आती है। आर्य समाज उस महापुरुष की जीवन कृति है। उनका समग्र जीवन दर्शन आर्य समाज के मन्तव्यों, सिद्धान्तों और विचारों में विद्यमान है। उन्होंने जीवन पर्यन्त अपने नाम के लिए, अपने यश के लिए, अपने सुख आराम के लिए कुछ नहीं किया। जो कुछ भी दिया और किया वह मानव जाति के कल्याण हेतु समर्पित रहा। वे रातों में जागकर देश में फैले, अज्ञान, अन्धकार, कुरीतियाँ, पाप, अधर्म और जड़ता के लिए घण्टों करुण क्रन्दन किया करते थे। किसी कवि ने उनकी अन्तर्पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति की है –

इस हूक सी दिल में उठती है, इक दर्द जिगर में होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है।।

महर्षि भारतीय धर्म संस्कृति और इतिहास के उज्ज्वल गरिमापूर्ण तथा सत्य सनातन पक्ष के अमर गायक थे। उनका स्वप्न था। संसार में सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार कैसे हो इसके लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे।

आर्य समाज किधर?

आज हम ऋषि अनुयायी आर्य समाज से जुड़े लोग किधर जा रहे हैं और क्या कर रहे हैं? हमारे पास इतना उच्च व्यावहारिक तर्कसंगत एवं जीवनोपयोगी चिन्तन है यदि हम उसे फैलाने व बांटने का सच्चे मन से यत्न करें तो निश्चय ही देव दयानन्द का स्वप्न 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' पूरा हो सकता है। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य वेद प्रचार था। यह उद्देश्य अब आत्म प्रचार, पद लिप्सा, भवन निर्माण धन संग्रह आदि में बदल रहा है। जो कि घातक है। आर्य समाज विचार है, जीवन की कला है, मानवता का संदेश है। जीओ और जीने दो की भावना है। वेदों की ओर लौटने की पुकार है। भाग्यवाद पर पुरुषार्थवाद की विजय है। भोग से योग की ओर चलने की पगडण्डी है। मनुष्य से देवता बनने की प्रेरणा है। दुर्गुण, दुर्व्यसनों और दुःखों से छूटने की संजीवनी बूटी है और आर्य समाज भारत के गौरवमय इतिहास की झांकी है।

इस स्वर्णिम इतिहास को प्रेरक और महान बनाने में जिन्होंने अपने रक्त से हस्ताक्षर किये उनका नाम व काम भी वन्दनीय और स्मरणीय है। ऋषि ने अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व से ऐसे पागल, दीवाने, जनूनवाले तथा मस्ताने लोग बनाये थे जिन्होंने 'इदं दयानन्दाय' कह कर अपना सर्वस्व होम कर दिया। वे थे स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, गुरुदत्त विद्यार्थी, स्वामी दर्शनानन्द, महात्मा हंसराज आदि। इन्हें चारों ओर दयानन्द ही नजर आया और कोई किसी तरह से भी न आया। सर से कफन बांधकर कातिल की खोज में निकल पड़े। जिन्होंने लहु–लुहान होकर अपने गुरु के कार्य को आगे बढ़ाया। अपने मिशन के दर्द को गली–गली गाया। जिन्होंने जिन्दगी भर फटे पैबन्द लगे कपड़े ओढ़कर सादगी, सेवा और सरलता में जिन्दगी गुजार दी।

आज आर्य समाज ऐसे लोग पैदा नहीं कर पा रहा हैं। यही इसके ठहराव व भटकाव का कारण बन रहा है। भवन तो बन रहे हैं, लोग नहीं बन पा रहे हैं? हम अपनी पहचान खो रहे हैं? स्वत्व बोध भूल रहे हैं। हम इतने सुविधावादी, अवसरवादी, सुखभोगवादी, तर्क और अहंवादी हो रहे हैं कि हमारे पास दूसरों को प्रभावित करने वाला अपना कोई जीवन दर्शन नहीं ठहर पा रहा है। विश्व को एकता और संगठन का पाठ पढ़ाने वाला आर्य जगत् स्वयं ईर्ष्या द्वेष, कलह और स्वार्थ की दलगत राजनीति के कीचड़ में फंस रहा हैं। यह सबके लिए चिन्तनीय है।

ऋषि को किसी ने नहीं पहचाना :– ओ ऋषिवर! आज तुम्हें क्या श्रद्धांजलि दूँ? आंसुओं के सिवा कुछ पास नहीं है। जब तेरे पावन चरित्र को सुनता और पढ़ता हूँ तो श्रद्धा भक्ति पूजा और आदर से रोम–रोम कृतज्ञ हो उठता है। हम भारतीयों ने तेरे स्वरूप को पूरी तरह से समझा ही नहीं? तुझे जाना ही नहीं, तुझे माना ही नहीं? यदि तू कहीं यूरोप की भूमि पर जन्मा होता तो दुनिया तेरी देवदूतों की तरह पूजा करती। तुझे मसीहा मानकर अपना आराध्य समझती। तेरे अमूल्य स्वर्णिम, जीवन सन्देशों को, तेरे मानवता पर किये उपकारों को, तेरे तप, त्याग, क्षमा और दया की अमर कहानियों को जन–जन तक पहुँचाती। तेरे असंख्य अनुयायी होते। तुझे इस धरती का श्रेष्ठ देवता समझा जाता।

किन्तु हम भारतीय तुझे पत्थर, जहर गालियाँ, अपमान, कष्ट और विरोध देते रहे। तू हंस–हंसकर भूली–भटकी, दीन–हीन अंधकार जड़ता में फंसी मानवता पर अमृत वर्षा करता रहा। आजीवन, विषव्यापी बनकर पाखण्ड, असत्य, अधर्म अन्धविश्वासों के आगे कभी झुका नहीं, समझौता नहीं किया। सारे जीवन में कहीं भी चारित्रिक, दुर्बलता, अर्थ, लोभ, पदलोभ नहीं आने दिया। जिस किसी पहलू से किसी ओर से तुझे देखा और परखा तू खरा ही उतरा। तेरे कट्टर विरोधी, आलोचक भी अन्दर से तेरे प्रशंसक रहे। तेरे इस भौतिक संसार को छोड़ने के बाद, तेरे वियोग में इतने शोक पत्र पोस्ट आफिस में एकत्र हो गये थे कि कर्मचारी कहते थे उतने पत्र तो हमने कभी किसी के बारे में नहीं देखे थे। वे पत्र कई मास तक एक प्रसिद्ध पत्र में छपते भी रहे।

अतुलनीय ऋषि :– यदि संसार के सभी महापुरुषों को तराजू के एक पलड़े में रखा जाये और मेरे प्यारे ऋषि को दूसरे पलड़े में रखा जाये तो गुणवत्ता की दृष्टि से, चरित्र, विचार, योगदान, प्रेरणा, आदर्श आदि सभी दृष्टियों से दयानन्द तेरा ही पलड़ा भारी होगा, क्योंकि तू तो प्रभु की इच्छा के लिए जिया था, तेरी अपनी तो कोई इच्छा थी ही नहीं।

ओ मेरी श्रद्धा भक्ति के केन्द्र देव दयानन्द! तू सचमुच वन्दनीय है। तेरा महान इतिहास प्रशंसनीय है। तेरे कृत्य वन्दनीय है, तेरी सेवाएं अर्चनीय हैं। तेरा जीवन अनुकरणीय है। तेरा तप–त्याग और बलिदान स्पृहणीय है। निर्वाणोत्सव के पावन पर्व पर तेरी जीवन स्मृति को शत्–शत् नमन प्रणाम।

आर्यो! ऋषि का निर्वाणोत्सव प्रतिवर्ष आता है। धूम–धड़ाके, चहल–पहल और भाग दौड़ में अपनी मूक प्रेरणा छोड़ जाता है। वह प्रेरणा है जो ऋषि ने हमें दृष्टि और राह दिखाई है। उसे जीवन के साथ जोड़ो अगर जीवन सुन्दर पवित्र व श्रेष्ठ बनेगा तो ही दूसरों पर प्रभाव पड़ेगा। हम इस अवसर पर आत्म चिन्तन करें, संकल्प लें। मन–वचन–कर्म, में शुद्धता पवित्रता उच्चता और दिव्यता लाएँ। स्वयं का कल्याण करें तथा दूसरों को कल्याण का मार्ग दिखाएं। यही ऋषि के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

– पता – 29–बी.जे. पूर्वी शालीमार बाग, दिल्ली–110052

महर्षि दयानन्द

- आर.सी. प्रसाद सिंह

जब स्वदेशी शब्द दर्शन-योग्य केवल कोष में था
और हर पुरुषार्थ का अवसान चिर-संतोष में था
शान्त-शीतल हो चुकी थी जब तरुण-विद्रोह-ज्वाला
जब विदेशी राजसत्ता-कण्ठ में थी विजय-माला
दिव्य अपराजेय भारत-शक्ति ने तब जो पुकारा,
युग-प्रवर्त्तक, प्रथम निस्सन्देह वह स्वर था तुम्हारा।
साधना सम्पूर्ण युग की मूर्त्त पूंजीभूत होकर
आ गई मानो, तुम्हारे रूप में अवधूत होकर
कर गए आचार्य शंकर रिक्त जो इतिहास-काया
धर धुरी युग धर्म की तुमने उसे सार्थक बनाया
मुड़ चली सावेग आर्यावर्त की जो प्राण-धारा,
हे अमर ऋषि, जागरण-उद्घोष था उसमें तुम्हारा।
कर दिया तुमने प्रकाशित वेद को, चिर-लुप्त जो था
दे दिया अधिकार जन-जन को मनन का, गुप्त जो था
खण्ड कर पाखण्डियों को, पोप-लीला ध्वस्त कर दी
एक विद्युत्-शक्ति सारे देश में जीवन्त भर दी
आहिमाचल-सेतु जो गूंजा कभी उन्मुक्ति नारा,
क्रान्ति-कानन-केसरी, वह मेघ-गर्जन था तुम्हारा।
तुम पराजित जाति की नव चेतना के अग्र गायक
पद्-दलित अभिमान की प्रतिशोध-झंझा के विनायक
कुसंस्कारों से छिड़े संघर्ष के निर्द्वन्द्व योद्धा
रक्त की ऊर्जा अजय, तारुण्य के निर्भय पुरोधा
हो गया बलिदान पावन जो पतित का बन सहारा,
ब्रह्मचर्यानल-प्रदीपित वज्र-तन वह था तुम्हारा।
आर्य-संस्कृति और वैदिक सभ्यता के तुम विधाता
एक ईश्वर, एक धार्मिक ग्रंथ के शुचि मंत्र-दाता
काल-कर को तुम सुमण्डित कर गए कोदण्ड बनकर
जब भविष्यत् का चला आग्नेय शर मार्तण्ड बनकर
हिन्द, हिन्दी और हिन्दू जाति का चमका सितारा,
सर्वदा शुभ नाम उसमें है जुड़ा पहले तुम्हारा।
हे विमल स्वामी, परम तत्वज्ञ मुनि, ब्रह्मात्म-ज्ञानी
आर्य संन्यासी, सुधारक, गुरु दयानन्दाभिधानी
राजनीतिक दासता से मुक्त हैं भारत-निवासी
चेतना राष्ट्रीय लेकिन आज भी है देवदासी
स्वप्न भारत-भारती का है अधूरा ही हमारा,
देश के सिर पर चढ़ा है आज भी ऋषि, ऋण तुम्हारा।

धर्म, समाज और शिक्षा के क्षेत्र में
आर्य समाज के कार्यों पर एक दृष्टि

"आर्य समाज ने भारतीय चिन्ता को झकझोर दिया था, पर प्राचीन आप्त वाक्य को मानने की प्रवृत्ति को उसने और भी अधिक प्रतिष्ठित किया। इसका परिणाम सभी क्षेत्रों में देखा गया। साहित्य के क्षेत्र में भी इस समय तक प्रमाण ग्रन्थों के आधार पर विवेचना करने की प्रथा चल पड़ी थी।" हिन्दी साहित्य के लिए आर्य समाज की यह ठोस सेवा है। धर्म के समान ही समाज में भी आर्य समाज ने आमूल परिवर्तन के लिए कठिन प्रयास किया और शिक्षा के क्षेत्र में सम्पूर्ण प्रणाली को ही प्राचीन विद्या तथा आर्य भाषा के दृढ़ आधार पर स्थित किया। इस प्रकार हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में आर्य समाज का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

जिन सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों के द्वारा हिन्दी को प्रोत्साहन मिला तथा जिन प्रवृत्तियों का इस दिशा में योगदान रहा है, उनमें आर्य समाज का स्थान सर्वोपरि है। यही कारण है कि हिन्दी भाषा अथवा साहित्य का इतिहास लिखने वाले सभी विद्वानों ने हिन्दी गद्य के निर्माण में आर्य समाज के योग को विशेष महत्त्वपूर्ण माना है। मिश्र बन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' में, रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में, पद्मसिंह शर्मा ने स्फुट निबन्धों में और काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित अनेक साहित्यिक विवरणों में आर्य समाज के धार्मिक और सुधारक आन्दोलन को गद्य के निर्माण और प्रसार के लिए अत्यधिक श्रेय दिया गया है।

स्वामी दयानन्द के देहान्त के कुछ वर्ष बाद ही उत्तर भारत में आर्य समाज का आन्दोलन इतना व्यापक हो गया कि वह देहातों तक में जा फैला। हिन्दी पहले–पहल दूरस्थ क्षेत्रों में आर्य समाज के प्रचारकों के प्रयत्न से ही पहुँच सकी। आर्य समाज से सम्पर्क के कारण हजारों व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी, जिससे कि वे समाज के सदस्य बन सकें और उनके दैनिक और साप्ताहिक कार्यक्रम में भाग ले सकें। अनेक साधारण कस्बों में भी आर्य समाज मंदिर बन गये। इन मंदिरों में साप्ताहिक सभाएँ होती थीं और सारा कार्य हिन्दी में किया जाता था। सभी स्थानों में वार्षिक उत्सव होते थे, जिनके कारण प्रचार कार्य को गति मिलती थी और जनता में जागृति पैदा होती थी। इस जागरण में प्राचीन वैदिक संस्कृति का स्थान था, धर्म और सभ्यता का प्रचार था, आचार और विचार की सात्विकता पर जोर था और इन सबके फलस्वरूप अपने देश और अपनी भाषा के गौरव की रक्षा हुई।

आर्य समाज के कार्यक्रम में हिन्दू संगठन एवं शुद्धि के कारण भी आर्य समाज के प्रचार कार्य को बल मिला। ईसाई या मुसलमान बने हुए हिन्दुओं को पुनः हिन्दू समाज में प्रविष्ट करना आर्य समाज ने अपना उद्देश्य बना लिया था। इससे हिन्दू समाज में आर्य समाज के कार्य के प्रति उत्साह का संचार हुआ और नवोत्साही समाज सुधारक तथा शिक्षितवर्ग अधिकाधिक इसका समर्थन करने लगा। उदाहरणार्थ, आर्य समाज ने बाल–विवाह का बड़ा विरोध किया और अजमेर के सामाजिक नेता, हरबिलास शारदा ने इस आशय का प्रस्ताव केन्द्रीय विधानसभा में रखा, जो बाद में (1929) कानून बन गया। केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधानसभाओं में जब कभी समाज सुधार सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत हुए तो आर्य समाज के नेताओं ने सदा उनका समर्थन किया।

20वीं शती के सामाजिक नेताओं ने हिन्दी को सबसे पहले शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थान दिया और दिलाया। सरकारी स्कूलों पर ही निर्भर न रहकर आर्य समाज ने पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान इत्यादि प्रदेशों में सैकड़ों शिक्षण संस्थाएँ स्थापित कीं, जिनके नाम 'आर्य समाज पाठशाला', आर्य कन्या विद्यालय, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल या कालेज आदि रखे गये। इन सभी में हिन्दी पढ़ना अनिवार्य था।

शिक्षा के प्रश्न को लेकर आर्य समाज में शताब्दी के आरम्भ में ही दो दल हो गये। एक दल गुरुकुल प्रणाली का समर्थक था और दूसरा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के स्कूलों में ही हिन्दी और समाज के कार्य को प्रोत्साहन देने के पक्ष में था। गुरुकुल प्रणाली के समर्थकों के नेता श्री मुंशीराम थे, जो संन्यास लेने के बाद स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने गुरुकुल प्रणाली को क्रियात्मक रूप देने के लिए हरिद्वार के पास कांगड़ी में सन् 1902 में एक गुरुकुल की स्थापना की। इसके बाद ही पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के विभिन्न शहरों में स्थानीय सामाजिक नेताओं द्वारा कई गुरुकुल खोल दिये गये, जिनमें से प्रमुख गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, कन्या महाविद्यालय जालंधर, देहरादून कन्या गुरुकुल, हाथरस तथा आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा है। इन गुरुकुलों में संस्कृत में वैदिक धर्म का अध्ययन और हिन्दी शिक्षा अनिवार्य है कि इसके कारण हिन्दी का प्रसार तेजी से हुआ। संस्कृत और हिन्दी के सान्निध्य से वैदिक और पौराणिक साहित्य का हिन्दी में अनुवाद हुआ और स्नातकों के रूप में हिन्दी को अनेक साहित्यिक और उत्साही प्रचारक मिल गये। दूसरे दल के प्रमुख नेता लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, पं. गुरुदत्त, लाला लालचन्द आदि थे। डी.ए.वी. कालेज, लाहौर की स्थापना के पश्चात् ऐसी ही उच्च शिक्षा संस्थाएँ पंजाब के अन्य नगरों में तथा विभिन्न प्रान्तों में स्थापित हुई। आज भी शिक्षा, प्रशासन, पत्रकारिता आदि के क्षेत्रों में अनेक स्थानों पर इन कालेजों व गुरुकुलों के स्नातक हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

सबसे अधिक सफलता आर्य समाज को बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में मिली। कन्या गुरुकुलों और विद्यालयों में हिन्दी अनिवार्य विषय ही नहीं था, बल्कि वह शिक्षा का एकमात्र माध्यम बनाई गई। कन्याओं की हिन्दी शिक्षा के कारण पंजाब जैसे प्रान्त का, जिसमें अधिकतर उर्दू का ही बोलबाला था, वातावरण धीरे–धीरे हिन्दी के अनुकूल होने लगा। सच तो यह है कि समस्त भारत में स्त्री शिक्षा की पक्की नींव आर्य समाज ने ही डाली।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धर्म, समाज और शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज का बड़ा प्रभाव था और इन तीनों ही क्षेत्रों में अपने कार्य की गतिविधि के लिए आर्य समाज ने हिन्दी को ही अपनाया। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – "आर्य समाज ने भारतीय चिन्ता को झकझोर दिया था, पर प्राचीन आप्त वाक्य को मानने की प्रवृत्ति को उसने और भी अधिक प्रतिष्ठित किया। इसका परिणाम सभी क्षेत्रों में देखा गया। साहित्य के क्षेत्र में भी इस समय तक प्रमाण ग्रन्थों के आधार पर विवेचना करने की प्रथा चल पड़ी थी।" हिन्दी साहित्य के लिए आर्य समाज की यह ठोस सेवा है। धर्म के समान ही समाज में भी आर्य समाज ने आमूल परिवर्तन के लिए कठिन प्रयास किया और शिक्षा के क्षेत्र में सम्पूर्ण प्रणाली को ही प्राचीन विद्या तथा आर्य भाषा के दृढ़ आधार पर स्थित किया। इस प्रकार हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में आर्य समाज का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

– संकलन, मधुर प्रकाश शास्त्री
उपमंत्री, सार्वदेशिक सभा

ज्योति पर्व दीपावली की
हार्दिक शुभकामनाएँ

सार्वदेशिक सभा परिवार समस्त आर्यजनों को दीपावली के पुनीत पर्व पर सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य और शांति की कामना से परिपूर्ण बधाई देता है।

दीपावली के दिन ही महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण, समस्त आर्यों के लिए ईश्वर भक्ति के मार्ग पर चलने तथा संगठित होने की सर्वोच्च प्रेरणा बनें, ऐसी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

"दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

दयानन्द तो बस दयानन्द ही थे

– कृष्ण चन्द्र गर्ग

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन में अन्दर बाहर सत्य और सात्विकता ओत–प्रोत थी। वे हर प्रकार के आडम्बर से परे थे। लोकोपकार उनका एकमात्र लक्ष्य था। परमात्मा ने उन्हें बुद्धिबल और नैतिक बल गजब का दिया था। उन्होंने समाज की स्थिति का तथा पुस्तकों का स्वाध्याय खूब किया था। उनकी स्मरण शक्ति कमाल की थी। व्याख्यान वे सरल और स्पष्ट भाषा में दिया करते थे। उनकी शैली मधुर और तर्कपूर्ण होती थी। उन्होंने सोई हुई हिन्दू जाति को जगाया। उसके खोये हुए गौरव को वापिस दिलाया। उसकी कायरता, अज्ञानता, भीरुता और अन्धविश्वास को धोया। महर्षि दयानन्द ने डंके की चोट से ऐलान किया कि आर्य लोग जो आजकल हिन्दू कहलाते हैं भारवतर्ष के ही मूल निवासी हैं। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि आर्य भारत में कहीं बाहर से आये थे। आर्यों का संस्कृत भाषा में साहित्य ही संसार में सबसे पुराना साहित्य है। संस्कृत के किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा कि आर्य भारतवर्ष में कहीं बाहर से आकार बसे थे। इस देश का सबसे पहला नाम आर्यावर्त था अर्थात् आर्यों का देश। उससे पहले इसका कोई और नाम न था। इस प्रकार उन्होंने हिन्दुओं के मनोबल को बढ़ाया।

स्वामी जी हिन्दुओं की सभी कमियों और कमजोरियों के लिए पुराणों को जिम्मेदार मानते थे। वे पुराणों को महर्षि वेद व्यास जी की रचना न मानते थे। वे लिखते है "जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यास जी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते क्योंकि शारीरिक सूत्र, योगदर्शन के भाष्य आदि व्यास जी कृत ग्रन्थों को देखने से पता लगता है कि वे बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी झूठी बातें कभी न लिखते जैसी पुराणों में है।"

स्वामी जी मूर्तिपूजा को भारत के सारे अनिष्टों का मूल मानते थे। पुराणों ने ही मूर्तिपूजा को प्रोत्साहित किया और हिन्दुत्व की कब्र खोद दी। अवतारवाद, जन्म पर आधारित जाति–प्रथा, सती–प्रथा, विधवा विवाह का निषेध, आदि अनेक ऐसी कुरीतियाँ जिनके कारण हिन्दू बदनाम हैं, सबको पुराणों में मान्यता प्राप्त है। पुराणों की ऐसी मान्यताएँ वेद विरुद्ध हैं। यदि पुराण और पौराणिक विचार हिन्दुओं में न होते तो ईसाईयों और मुसलमानों को हिन्दुओं के विरोध में कहने को कुछ भी न मिल पाता और न ही इतनी आसानी से हिन्दू मुसलमान और ईसाई बनते। हिन्दू मत कच्चे धागे की तरह बन गया था जिसे हलके झटके से तोड़ा जा सकता था। महर्षि दयानन्द ने पुराणों का पुरजोर खण्डन किया और वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को प्रकट किया। इस्लाम और ईसाईयत की कमियाँ और खराबियाँ दिखाकर हिन्दुओं में आत्मविश्वास पैदा किया जिससे उन्हें अपने वैदिक धर्म में बने रहने की प्रेरणा मिली और हिन्दू मत लोहे की छड़ सा मजबूत हो गया।

महर्षि दयानन्द सत्य के प्रबल पक्षधर थे। आर्य समाज के दस नियमों में चौथा नियम उन्होंने दिया – 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' वे मानते थे कि मनुष्य का आत्मा सत्य–असत्य को जानने वाला है। परन्तु पण्डित लोग अपनी प्रतिष्ठा, हानि और निन्दा के भय से सत्य को प्रकट नहीं करते। उन्होंने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में उपनिषद् का निम्न श्लोक उद्धृत किया है –

न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
न हि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्।।

अर्थात् सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं है और सत्य से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए सत्य का आचरण करें।

महर्षि दयानन्द मानते थे कि हमारा नाम आर्य है, हिन्दू नहीं। आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ पुरुष। अरब के लोग काफिर और दुष्ट को हिन्दू कहते हैं। वेदशी मुसलमानों ने हमें हिन्दू नाम दिया है।

महाभारत के उद्योगपर्व (विदुरनीति) में एक श्लोक है –

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र से कहते हैं – 'हे राजन्! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिए प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं। परन्तु सुनने में अप्रिय लगे और वह कल्याण करने वाला वचन हो उसका कहने और सुनने वाला पुरुष दुर्लभ है।'

महर्षि दयानन्द ऐसे ही हितकारक वचन कहने वाले विरले मनुष्य थे। वे राजे–महाराजाओं के सामने बड़े से बड़े अंग्रेज अफसरों की उपस्थिति में, मुल्ला मौलवियों और पण्डों की मौजूदगी में निर्भीक होकर सबके हित की सत्य बात कहा करते थे।

महर्षि दयानन्द ने राष्ट्रीय स्वाभिमान को जगाया, विशुद्ध भारतीयता पर बल दिया। सत्य असत्य विवेक की प्रवृत्ति को जगाया, बुद्धिवाद को बढ़ावा दिया, अन्धविश्वास और रूढ़िवाद का खण्डन किया।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामी जी मूर्तिपूजा को सब बुराईयों की जड़ मानते थे और मन्दिरों को उनके अड्डे मानते थे। जुलाई 1869 की बात है। कानपुर में पं. गुरुप्रसाद और प्रयाग नारायण ने 'कैलाश' और 'बैकुण्ठ' नामक दो मंदिर बहुत रुपया लगाकर बनवाये थे। स्वामी जी ने उनसे कहा था कि आप लोगों ने लाखों रुपया व्यर्थ खो दिया। इससे तो यह अच्छा था कि कान्यकुब्ज कन्याओं का जो 30–30 वर्ष की कुमारी बैठी हैं, विवाह करवा देते या कोई कला–कौशल का कारखाना खोलते जिससे देश और जाति का भला होता। स्वामी जी का दरबार मित्र, शत्रु सबके लिए खुला था। वे सबके साथ प्रेम से बर्ताव करते थे।

सन् 1872 में भागलपुर में प्रसंग आने पर स्वामी जी ने कहा कि हिन्दुओं में जो मुसलमानों के प्रति सहानुभूति का अभाव और द्वेष का भाव है उसका कारण यह नहीं कि हिन्दुओं को मुसलमानों से स्वाभाविक द्वेश है, वास्तव में उसका कारण हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों का व्यवहार है।

महर्षि दयानन्द के जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य परोपकार था। सन् 1868 के आरम्भ की बात है। कर्णवास में एक दिन पण्डित इन्द्रमणि ने स्वामी जी से कहा कि आप अवधूत होकर खण्डन–मण्डन के बखेड़े में क्यों पड़े हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि "मेरे लिए बखेड़ा नहीं है, प्रत्युत यह ऋषियों का ऋण चुकाना है। स्वार्थी लोगों ने ऋषि सन्तान को कुरीतियों में फंसा रखा है। मुझसे उसकी यह दीन–दशा देखी नहीं जाती। मैंने उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रण कर लिया है।" इसीलिए महर्षि ने आर्य समाज का छठा नियम बनाया – "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है.......।' इसी प्रकारा आर्य समाज का नौवां नियम बनाया – "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए। किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।'

स्वामी जी कहते थे कि पत्थरों को पूजने से पण्डितों की बुद्धि पत्थर हो गई है। इस कारण से वे सत्य–सिद्धान्तों को समझने में असमर्थ हैं। मैं उनकी जड़पूजा छुड़वाकर उनकी बुद्धि को निर्मल करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। वे यह भी कहते थे "मेरा काम लोगों के मनमंदिरों से मूर्तियाँ निकलवाना है, ईंट–पत्थर के मंदिरों को तोड़ना फोड़ना नहीं है।

सन् 1878 में अजमेर में राय बहादुर श्यामसुन्दरलाल ने स्वामी जी से कहा कि आप मूर्तिपूजा पर इतना तीव्र आक्रमण क्यों करते हैं, उसे थोड़ा नम्र कर देने से भी तो काम चल सकता है। स्वामी जी ने उत्तर दिया – मूर्तिपूजा पर मृदु आक्रमण करने व उससे किसी प्रकार की सन्धि करने से हमारे सिद्धान्तों को भी वही दशा होगी जो अन्य सिद्धान्तों की हुई है और कुछ समय के बाद आर्य समाज पौराणिक होकर हिन्दुओं में मिल जायेगा।

भोजन कैसे भ्रष्ट होता है – फर्रुखाबाद में एक दिन एक साध स्वामी जी के लिए कढ़ी और चावल बनाकर लाया और उन्होंने उसे खा लिया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गये जो साधों के घर का भोजन खा लिया। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है – एक तो यदि किसी को दुःख देकर धन प्राप्त किया जाये और उससे अन्न आदि खरीद कर भोजन बनाया जाये, दूसरे भोजन मलिन हो या उसमें कोई मलिन वस्तु गिर जाये। साध लोगों का मेहनत का पैसा है, उससे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है।

देश की भाषा हिन्दी – महर्षि दयानन्द देश की एकता के लिए आवश्यक समझते थे कि सारे देश की भाषा एक हिन्दी हो। इसलिए वे अपने ग्रन्थों का किसी दूसरी भारतीय भाषा में अनुवाद न करवाना चाहते थे। वे चाहते थे कि सभी देशवासी उनके ग्रन्थों को हिन्दी में ही पढ़ें। वे मानते थे कि भारतवासियों को हिन्दी भाषा सीख लेना कुछ कठिन नहीं है। जो इस देश में जन्म लेकर अपनी भाषा सीखने का परिश्रम नहीं करता उससे और क्या आशा की जा सकती है। उनके ग्रन्थों का अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में अनुवाद के वे विरोधी न थे। सन् 1870 में मिर्जापुर में स्वामी जी ने एक बंगाली बनवारीलाल को अंग्रेजी सीखने के लिए और मैक्समूलर कृत वेदों का अंग्रेजी अनुवाद सुनने के लिए नौकर रखा था। सन् 1879 में दानापुर में एक दिन एक सज्जन ने स्वामी जी से कहा कि आप इस्लाम के विरुद्ध न कहा करें। उस समय तो स्वामी जी ने कोई उत्तर न दिया। परन्तु सायंकाल को जो व्याख्यान दिया वह आदि से अन्त तक इस्लाम के सिद्धान्तों पर ही था जिसमें उनकी तीव्र समालोचना की। व्याख्यान का आरम्भ ही इन शब्दों से किया कि मुझे कहा गया है कि मुसलमानी मत का खण्डन मत करो, परन्तु मैं सत्य को छिपा नहीं सकता। जब मुसलमानों की चलती थी तब वे हम लोगों को तलवार से खण्डन करते थे। अब यह अन्धेर देखो कि मुझे उनका जिहवा मात्र से खण्डन करने से मना करते हैं। मैं ऐसा अच्छा राज्य पाकर भला किसी की पोल खोलने से कभी रुक सकता हूँ।

एक दिन पण्ड्या मोहनलाल ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति कब होगी। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना ऐसा होना मुश्किल है।

वेदों के सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं "मैं वेदों में कोई

अगले पृष्ठ पर जारी

The Pre-Diwali Festival of Healthcare

❖ **Adapted**

IT is not a mythology. It is a historial fact.The history which does not enocmpass the research of modern historians. Like archeological finds, one has to link the wires scattered in the pages of various texts. They are in the four *Vedas,* six *Vedangas* (part of the Vedas) and six *up-angas* (ancillory Vedas). The Ayurveda (Science of life) is one of them, and has been attributed mainly to the Atharva-Veda, though many hymns of the Rig-veda and Yajur-veda have its references in unmistakable terms.

If the Vedas are the sacred trusts of our glory and ancient heritage, obviously and medicare, like all other branches of knowledge and sciences. Here we deal only with the topic placed in the caption. The *Charak Samhita* (Sutra Sthan 30/20)—an authoritative treatise on ancient medical system—acknowledges its sources, from Atharve-veda and presents many illustratious and specimens of medical sciences, public health and dietics. Thereafter line up *Brahman Granthas,* and tehre with further eleboration of the Vedic hymns, various rituals *(Karamkandas)* are ordained for the human kind. In this context, the founder of the medical and health care Dhanvanti is worshipped invariably with offerings in the sacrificial fires trailed with the chanting of *Om Dhanvantraye Swaha* vksa èkUoUrj;s Lokgk. In fact the advent of Dhanvantari is celebrated in the country still with great devotion and faith, and in modern terms it is like world health day being observed under the auspices of WHO.

The origin is reflected in the chain of festivals beginning from *Dusshera* in northern India and Mysore, *Durga Puja* in the eastern parts of the country and Navaratra in the south. The advent of *Deepavali* (festival of candles) is marked with and preceded by observing the *Dhanvantri Puja* or *Dhan Teras* (Thirteen day according to Hindu calender)—as it is called in the North-two days before the Diwali. Dhanvantri (god or giver of health) is worshipped that day. To put the records straight, the Day attaches due importnce to the physical health. In the wake of coming winter, certain measures are taken for improving the level of individual and national health. Proper healthcare is the hall-mark of this occasion, when different kinds of fooditems are prepared and

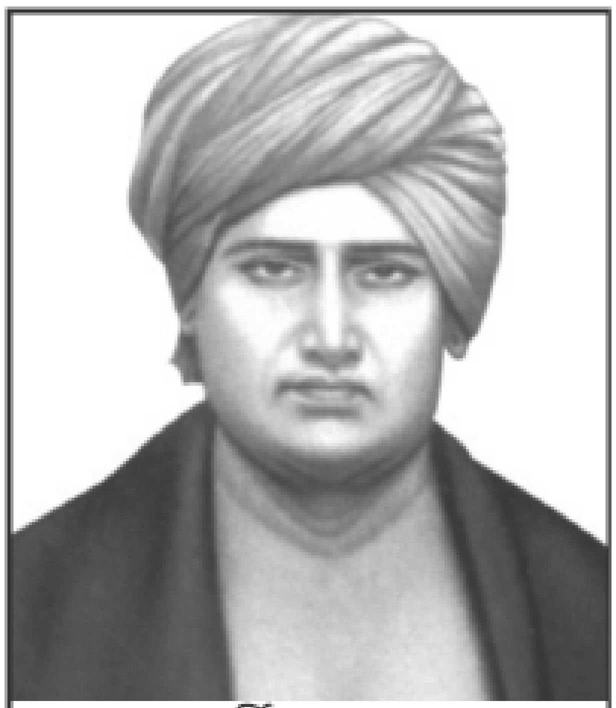

महर्षि दयानन्द

offered unto sacrifical fire (Yajna) and shared for eating among the neighbours and relatives. New crops of paddy, sugarcane, ured, moong and til (oilseeds) are the main ingredients in these preparations, which make the body strong to recieve the temper of winter, because in its wake with the change of seasons. Influenza, Malaria fever etc. attack with severity.

However, it is a mystery how the custom of purchasing new untensils of brass, copper (and now of stainless steel) has been associated with the festival of *Dhan Teras.* According to the faith, the more metal vessels are purchased alongwith the earthan oil-candles *(Deepak)* and commodities for pompus celebrations at the coming Divali, the wealth (Dhan) brings its show on this auspicious festival. But if the proverbial health is something impotant, then this festival signifies that health is wealth *(Dhan)* and we should celebrate it as a Festival of Health, in advance of the Deepavali.

Dhanvantri is not a mythological or legendry figure, though the name may have become later a symbol of medicare and healthcare. It is now regarded erroneously as an incarnation of god and is always remembered with respectful epithets of *Shri* and *Bhagawan.* His full name is therefore *Bhagawan Shri Dhanvantri,* the one who took vow to keep humanity perfectly healthy, not only by administering drugs and prescribing treatment, but by forestalling a complete code of living a life free from sickness, mental and physical both. He has a right to be remembered by the generations in all ages. Danvantri has earned such an enviable role in the annals of Indian history for himself and this pre-Deepavali is the outcome of due recognition of his services and an indication good to maintain health at all costs.

Dhanvantari was born in Kashi (Varanasi), a city and centre of various branches or learning since time immemorial. The historical links also establish that he was a powerful ruler of his area, whose sole aim was to work for a completely healthy society even beyond the frontiers of his kingdom. On the basis of etymological anylisits of his name, according to the noted Sanskrit grammarian *Panini,* the *Dhanva,* first part of his name conneotes 'desert'. Consequently, a person whose fame went beyond the deserts (and oceans) for his first invention and discovery of medical science and contribution there to was termed as Dhanwantari.

This contention is reinforced from teh excerpts from the texts of famous *Susrut lqJqr and its commentary by* Ulhana mYgqu. According to both of them, his real name was Divodasa fnoksnkl, or grandson was awarded the title of Dhanvantari. Justifibly, celebrated ancient surge on *susrut* has given different cannotation and etymology of his name. According to him, *Dhanu* word in Sanskrit means an arch *Dhanus* and that ay is the symbol of weapons to fight the diseases, which were nothing but instrument of surgery. *Susrut* and his guru *Acharya Dhanvantari* were thus the noted surgeons of their ages. While *Pratardan* izrnzu Vamaka oked *Brahmdutta* czànÙk were successors to the kingdom of *Divedasa* in Kashi, his intellectual successors in line were *Atri* vf= *Bhrigu* Hk`xq *Vashistha* okf'k"Bk etc, named in the history.

पिछले पृष्ठ का शेष

दयानन्द तो बस दयानन्द ही थे

बात युक्ति विरुद्ध वा दोष की नहीं देखता और उन्हीं पर मेरा मत है।'' महर्षि का यह मत सभी ऋषि–मुनियों के मत के अनुकूल ही है। वैशेषिक दर्शन में महर्षि कणाद लिखते हैं – बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे। अर्थात् वेद का प्रत्येक वाक्य समझदारी से बना है। महर्षि मनु कहते हैं – यस्तर्केणानुसन्धत्ते तं धर्म वेद नेतरः। अर्थात् जो युक्ति से सिद्ध हो वही वेद का धर्म है, और कोई नहीं। महर्षि दयानन्द वेदों को ईश्वरकृत तथा सब सत्य विद्याओं का पुस्तक मानते थे। वे वेद पढ़ने का अधिकार स्त्री–पुरुष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबका मानते थे और वे मानते थे कि वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

महर्षि दयानन्द का स्वाध्याय बहुत विस्तृत था। ''भ्रान्ति निवारण'' पुस्तक में पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न को उत्तर देते हुए वे लिखते हैं – ''मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्व मीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ।''

अंग्रेजी राज्य के सम्बन्ध में – 23 नवम्बर, 1880 को थियोसिफिकल सोसायटी की मैडम ब्लेवेट्स्की को लिखे पत्र में स्वामी दयानन्द भगवान को धन्यवाद देते हैं कि अंग्रेजी राज्य में मुसलमानों के अत्याचार से कुछ–कुछ छुटकारा मिला है। ''मैं तथा अन्य सज्जन लोग पुस्तकें लिखने, उपदेश देने तथा धर्म के विषय में स्वतन्त्र हैं। इसका कारण इग्लैंड की महारानी, पार्लियामेंट तथा भारत में राज्याधिकारी धार्मिक, विद्वान् और सुशील हैं। अगर ऐसा न होना तो स्वतंत्रता से व्याख्यान देना, वेदमत प्रचारक पुस्तकें लिखना सम्भव न होता और आज तक मेरा शरीर भी बचना कठिन था। इसलिए इन सभी महानुभावों को हम धन्यवाद देते हैं।''

पण्डित महेन्द्रपाल आर्य (पूर्व नाम मौलवी महबूब अली) जिला बागपत बड़ौत के पास बरवाला में एक बड़ी मस्जिद के इमाम थे। महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर वे आर्य समाज में आ गये। वे कहते हैं ''मैं अज्ञानियों के टोले से निकल कर ज्ञानियों के टोले में आया हूँ। मुस्लिम समाज अनपढ़ व अन्धविश्वासियों का समाज है। बाकी जिन्दगी मैं पढ़े लिखे अन्धविश्वासमुक्त नेक लोगों के साथ बिताना चाहता हूँ।''

सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल एम.ए. के विचार – ''इस महान् ग्रन्थ के अध्ययन से मेरी विचारधारा बदल गई है। सोई हुई जाति के स्वाभिमान को जागृत करने वाला यह ग्रन्थ अद्वितीय है।''

वीर सावरकर की सत्यार्थप्रकाश पर टिप्पणी – ''हिन्दू जाति की ठण्डी रगों में गर्म खून का संचार करने वाला यह ग्रन्थ अमर रहे। सत्यार्थप्रकाश की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।'' महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में मनुष्य की परिभाषा में लिखते हैं – ''मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुख और हानि–लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं अपने सर्व सामर्थ्य से अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न होवे।'' महाराज भर्तृहरि जी का एक श्लोक है –

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

अर्थात् नीति को जानने वाले लोग चाहे निन्दा करें या प्रशंसा करें, धन आये या जाये, मृत्यु अभी आ जाये या चिरकाल के बाद आये, परन्तु धैर्यवान लोगों के पग न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते। यह श्लोक महर्षि दयानन्द के जीवन पर पूरी तरह घटित होता है। सभी प्रकार के बिघ्न–बाधाओं, खतरों और प्रलोभनों से टक्कर लेते हुए स्वामी जी सत्य और न्याय के प्रचार पर डटे रहे। प्रसिद्ध कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने कहा था – 'हमारा सबसे अधिक उपकार महर्षि दयानन्द ने किया है।'

महान् कहानीकार उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की एक कहानी है 'आपका चित्र'। कहानी के नायक ने अपने कमरे में स्वामी दयानन्द का एक चित्र लटका रखा है। वह बता रहा है कि यह चित्र उसने क्यों लटका रखा है। ''मैं उसे केवल इस कारण से अपने कमरे में लटकाए हुए हूँ कि स्वामी जी के जीवन का उच्च और पवित्र आचरण सदा मेरी आंखों के सामने रहे। जिस घड़ी सांसारिक लोगों के व्यवहार से मेरा मन ऊब जाये, जिस समय प्रलोभनों के कारण पग डगमगाए अथवा प्रतिशोध की भावना मेरे मन में लहरें लेने लगे अथवा जीवन की कठिन राहें मेरे साहस व शौर्य की अग्नि को मन्द करने लगे, उस विकट बेला में उस पवित्र मोहिनी मूर्ति के दर्शनों से आकुल व्याकुल हृदय को शांति हो, दृढ़ता धीरज बने रहें, क्षमा व सहनशीलता के मार्ग पर पग चलते चलें तथा मैं अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि इस चित्र से मुझे लाभ पहुँचा है और एक बार नहीं, कई बार।

ज्योति पर्व - दीपावली

- स्व. आचार्य राजेन्द्र शर्मा

सत्ता और चेतना से समन्वित जीवात्मा आनन्द की खोज में सतत प्रयासरत रहता है। आनन्द उसका ध्येय है, आनन्द उसकी सीमा है जहां तक उसको दौड़ना है। जीवन-यात्रा का अन्तिम सोपान आनन्द है। परन्तु मानव भटक जाता है, पथ-भ्रष्ट हो जाता है, और उसकी अभीप्सा मात्र अभीप्सा ही रह जाती है। शाश्वत आनन्द की उपलब्धि के लिए उसका प्रयास सृष्टि के उषा-काल से ही निरन्तर चल रहा है। पर्वों का समायोजन उसी आनन्द की प्राप्ति हेतु एक सशक्त प्रयास है। मानव मस्तिष्क प्रपंचों और मायाजालों में फंसकर मृग-मरीचिका की अतृप्त तृष्णा के चक्कर में सदा ही व्याकुलता से छटपटाता रहता है। पर्व समय-समय पर आकर उसको आनन्द से भर देते हैं, हर्ष, उल्लास से पूर्ण कर देते हैं, उमंग और उत्साह से सराबोर कर जाते हैं और यही पर्वों की सार्थकता है। दीपावली ऐसा ही महान् पर्व है जिसको समृद्धि का पर्व कहा जाता है। आध्यात्मिक सम्पदा और भौतिक सम्पदा से हमारा अपना जीवन तथा समस्त राष्ट्रीय जीवन सम्पन्न बने तथा यह समृद्धि समस्त विश्व को अभाव मुक्त करने में समर्थ हो जिससे प्रत्येक मानव आशा और विश्वास से भरकर खिलखिला सके, यह है सार्वभौम उद्देश्य इस महान गरिमामय पर्व का जिसको ज्योति पर्व के रूप में पुकारा जाता है।

ज्योति-पर्व नामकरण ही इस महान उद्देश्य की सफलता के केन्द्र बिन्दु को समाहित किए हुए है। इस रहस्य को हम इस तरह से समझ सकते हैं कि अन्धकार अविद्या समस्त क्लेशों का क्षेत्र है। महर्षि पतंजलि की यह घोषणा शाश्वत सत्य है। इसलिए यह पर्व अन्धकार अज्ञान के विनाश का प्रतीक है और हम सबको संकल्प लेना है कि कहीं पर भी अन्धकार नहीं रहने देंगे। छोटे-छोटे दीपकों को प्रज्ज्वलित कर हम इसी भावना को अभिव्यक्त करते हैं और सर्वशक्तिमान परम प्रभु से सहयोग मांगते हैं कि तमसो मा ज्योतिर्गमय। क्योंकि हम जानते हैं कि अन्धकार, तम, अज्ञान ही वास्तव में मृत्यु है और प्रकाश, ज्योति ज्ञान ही अमृत है। प्रकाश प्रसन्नता और आह्लाद देता है तथा अन्धकार भय और शंका उत्पन्न करता है।

छोटा-सा लघु मिट्टी का दीप आज तिरस्कृत कर दिया गया है। विद्युत प्रकाश की चकाचौंध से हमने मिट्टी के दीप, नई रूई, सरसों के तेल और उसकी शांतिदायिनी, प्रदूषण, विनाशिनी, दृष्टिवार्धिका शक्ति को ही नहीं विस्मृत कर दिया अपितु अपने जीवन के लक्ष्य से ही वंचित हो गए। मिट्टी का यह लघु दीप प्रतीक है अपने इस मिट्टी के शरीर का जिसको दीपक बनाकर हमको स्वयं को प्रकाशित करना है और प्रज्ज्वलित स्व जीवन दीप से जन-जन दीपों को प्रदीप्त करना है। स्वदीप में न्यूनता नहीं आनी है और अन्धकारित अन्य जीवन दीप मेरे स्वल्प प्रकाश से ही जगमगा उठते हैं। तब ही महाकवि की यह भावना चरितार्थ होती है कि-

जलाओ दिए पर रहे ध्यान इतना।
अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाए।।

सूर्य के जाने के पश्चात् जैसे दीपक कह उठता है कि तुम भुवन भास्कर चले गए परन्तु तुमसे प्रेरणा प्राप्त कर मैं तुम्हारे आगमन तक अन्धेरे से युद्ध करता रहूँगा यह है पावन संकल्प जो आज जन-जन को लेना है।

भुवन भास्कर महर्षि दयानन्द के 'कैवल्यधाम' में समाहित होने के पश्चात् आर्यजनों पर यह उत्तरदायित्व आता है कि ज्ञान के मार्ग समाप्त न होने पाएं, प्रकाश के स्तम्भ टूटने न पाए और सत्य अर्थ का प्रकाश होता रहे जिससे मानवता भटकने न पाए तथा सत्य का राजमार्ग सदा प्रशस्त रहे।

परन्तु आर्यो! सतर्क और सावधान रहो कि कहीं यह ज्योति पर्व अन्धकार पर्व न बन जाए। अपने आप को और अपने घर को आलोकित करने का तात्पर्य यह नहीं है कि अपना अन्धकार तुम पड़ोसी के घर में ढकेल दो और उसके जीवन को और उसके घर को अन्धकार ग्रस्त कर दो। स्मरण रखो पड़ोस का अन्धकार आपके आलोक को भी तहस-नहस कर देगा और समस्त आर्यत्व पिशाचत्व में परिवर्तित हो जायेगा। अन्धकार में हम अपने आपको ही देखते हैं, अन्य किसी की भी अनुभूति हमको नहीं होती है। अतः अन्धकार विनाश हमारा कर्त्तव्य बन जाता है। वेद का उद्‌बोधन हमें सदा स्मरण रखना है- 'आर्यः ज्योतिरग्रा।' और 'उरू ज्योतिः चक्रथुः आर्याम्।'

मशालें वेद की लेकर अन्धेरा
जो मिटा डाले।
उठे तो दिन निकल आये
वही तो आर्य होता है।।

- डी-110, आर्य समाज
शकरपुर, दिल्ली-92

जगमग दीप जलाएं

- राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति

आओ! आर्य सपूतों आओ! जगमग दीप जलाएं।
गहन तिमिर में भटक रही जगती को राह दिखाएं।।
मिट्टी के दीपों से निश्चय, मिटता नहीं अन्धेरा,
अगणित तारों के उगने से, होता नहीं सबेरा,
दानवता के तिमर सैन्य ने, महिमण्डल है घेरा,
रहा नहीं है मानवता का, सुन्दर-सुखद बसेरा,
बिखरा किरणें ज्ञान ज्योति की, नया सबेरा लाएं।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएं।।
तम के अंचल में सोता है, आज यहां दिनमान,
ज्ञान हमारा कहां लुप्त है, विस्तृत क्यों अज्ञान?
चलो, देख लो, कहां सो रहा, भारत का अभिमान,
सत्य-शिवम्-सुन्दरता पूरित,कहां गए प्रतिमान?
बन करके आलोक पुंज हम, जाग्रत ज्योति जगाएं।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएं।।
लोभ-मोह-मद मत्सर का है फैला पारावार,
काम-क्रोध बढ़ रहा चतुर्दिक, नष्ट धर्म का सार,
मानवता के तत्वों का क्यों? होता है व्यापार,
भौतिक संस्कृति नहीं कभी, कर सकती है उपचार,
धर्माध्यात्म प्रदीप प्रमाहम, पुनः प्रदीप्त कराएं।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएं।।
ऐसा दीप जले जिससे, न रहे तिमिर का लेश,
ज्योतिर्मय हो पूर्ण धरा यह, प्रगटे ज्ञान दिनेश,
दम्भ द्वेष-मिथ्या-हिंसा का बचे नहीं अवशेष,
प्रेम-दया-ममता का, सदा रहे उन्मेष,
शांति सफलता-समृद्धि के संगीत मनुज सब गाएं।
गहन तिमिर में भटक रही जगती को राह दिखाएं।।

- मुसाफिरखाना, सुलतानपुर (उ. प्र.)

प्रश्न! ऋषि दयानन्द क्या थे? सुधारक, यथास्थितिवादी अथवा क्रान्तिकारी

– डॉ. भवानीलाल भारतीय

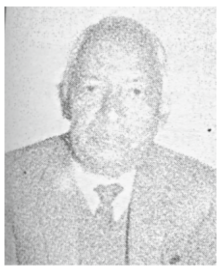

ऋषि दयानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के महापुरुष थे। उस युग में उनके सिवाय बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब आदि प्रान्तों में अन्य अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए थे। सर्वाधिक महापुरुष बंगाल ने दिये। इनमें राजा राममोहनराय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर परमहंस रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द आदि के नाम स्मरणीय हैं। गुजरात ने यदि दयानन्द सरस्वती को पैदा किया तो महाराष्ट्र में समाज सुधार के क्षेत्र में योगदान करने वाले महादेव गोविन्द्र रानाडे जन्मे। प्रश्न यह है कि क्यों न हम इस महापुरुष को 1. सुधारक, 2. सुधारक यथास्थितिवादी (जैसा है वैसा चलने दें अपरिवर्तन के हामी) तथा क्रान्तिकारी (आमूल चूल परिवर्तन के पक्षपाती) इन वर्गों में बांटकर यह पता लगायें इनमें दयानन्द किस वर्ग में आते हैं?

स्पष्ट है कि सुधारक लोग धर्म, समाज, संस्कृति तथा राष्ट्र के क्षेत्र में आई विकृतियों, विडम्बनाओं तथा बुराइयों को दूर कर वहां स्वच्छ, शालीन, लोकहितकारी व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं। सुधारक धर्म के नाम पर प्रचलित ढोंग, पाखण्ड, अंधविश्वास, व्यर्थ के कर्मकाण्ड आदि को दूर कर इसलोक तथा परलोक में उन्नति करने का लक्ष्य निर्धारित करता है। वह समाज में पैदा हुई कुरीतियों, जड़ता विषमता तथा शोषण को समाप्त कर सामाजिक समता का इच्छुक होता है।

इसके विपरीत यथा स्थितिवादी धर्म और समाज में किसी भी प्रकार के परिवर्तन का विरोधी होता है। वह गतानुगति का पोषक होता है। वह इन क्षेत्रों में कोई अवनति बुराई तथा विकृति को नहीं देखता, यदि देखता भी है तो उससे आंखें मूंदे रखता है। उसे प्रचलित रुढ़ियों, पाखण्डों और अंधविश्वासों में कोई बुराई दिखाई नहीं देती। इसके विपरीत वह ऐसे पाखण्डों और अंधविश्वासों के औचित्य को स्वनिर्मित हेत्वाभासों तथा शब्दाडम्बर पूर्ण व्याख्याओं से सत्य और आचरणीय बताता है। इन दोनों वर्गों से भिन्न क्रान्तिकारी हैं। वह अज्ञान, अविद्या, अंधश्रद्धा, ढोंग, पाखण्ड तथा अंधविश्वास से किंचित मात्र समझौता या सहयोग नहीं करता। इन बुराइयों को जड़ मूल से नष्ट कर एक बुद्धि प्रधान धर्म तथा समानता युक्त समाज के निर्माण का इच्छुक होता है। ऐसे क्रान्तिद्रष्टा समाज में कम मिलते हैं।

इन कसौटियों पर यदि उक्त महापुरुषों के कार्य एवं विचारों की परीक्षा करें तो हम यह कहेंगे कि राम मोहन राय, केशवचन्द्रसेन, विद्यासागर तथा रानाडे सुधारक वर्ग के महापुरुष थे। परमहंस रामकृष्ण उनके शिष्य विवेकानन्द तथा महाराष्ट्र के अग्रणी नेता बाल गंगाधर तिलक यथा स्थितिवादी, सुधार कार्य के विरोधी तथा जैसा चलता है वैसा चलने दें के समर्थक थे। दयानन्द क्रान्तिकारी थे वे धर्म समाज तथा राष्ट्र ही नहीं अखिल समग्र मानवता में एक नवीन क्रान्ति चेतना लाकर परिवर्तन को लाना चाहते थे। सुधारक वर्ग हमारे लिए वंदनीय है। राममोहन राय का धर्म एवं समाज के क्षेत्र में किया गया सुधार कार्य सर्वथा, सर्वदा अभिनन्दनीय है और रहेगा। उन्होंने नारी के अधिकारों के लिए आवाज उठाई। सती दाह, विधवा उत्पीड़न सामाजिक विषमता, पुरोहित वर्ग की तानाशाही जन्माधारित वर्ण–व्यवस्था का विरोध किया। धर्म के क्षेत्र में एकेश्वरवाद का समर्थन वेदों एवं उपनिषदों आदि सत्य शास्त्रों को स्वीकार करना, प्रतिमा पूजन, प्रतीक पूजन आदि से उत्पन्न धार्मिक अंधविश्वासों का प्रबल खण्डन उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के उज्ज्वल पहलू हैं। राममोहन राय के सुधार कार्य को केशव चन्द्र ने आगे तो बढ़ाया किन्तु ईसाई चिन्तन से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण वे राष्ट्रीय धारा के मूल प्रवाह से दूर चले गये। इसके विपरीत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर यद्यपि सनातनी पण्डित थे। किन्तु विधवाओं के पुनर्विवाह का कानून 1856 में बनवाने तथा स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन करने के कारण वे तत्कालीन बंगाली सुधारकों में महत्त्वपूर्ण माने गये। महादेव गोविन्द रानाडे की सुधार कार्य में दिलचस्पी उनके गुरु स्वामी दयानन्द की प्रेरणा को माना जा सकता है। यही कारण है कि उन्होंने कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के साथ–साथ समाज सुधार सम्मेलनों का नियमित आयोजन किया तथा कांग्रेस के माध्यम से राष्ट्रीय चिन्ता के साथ–साथ समाज सुधार के कार्य को भी महत्त्व दिया।

यथा स्थितिवादी (स्थिति स्थापक) वर्ग का मानना था कि धर्म और समाज, यहां तक कि राष्ट्र के क्षेत्र में जो विकृतियाँ बुराइयाँ आ गई हैं, उनकी ओर दृष्टि मत डालो जो जैसा है वैसा चलने दो। श्री रामकृष्ण तो समाज में आई बुराइयों के प्रति सदा आँखें मूंदे रहे और स्वामी विवेकानन्द अपने वाक् चातुर्य वाक् पटुता तथा तर्क क्षमता से बाल विवाह का समर्थन तथा विधवा पुनर्विवाह का विरोध करने से नहीं चूके। (विस्तार के लिए देखें मेरा लिखा ग्रन्थ स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द तुलनात्मक अध्ययन)।

परमहंस रामकृष्ण की कथित धार्मिक सहिष्णुता तो और भी विचित्र थी। वे विभिन्न मतों के मूल नैतिक उपदेशों की एकता के समर्थन के साथ उनके उचित अनुचित क्रिया काण्डों तथा आचरणों का समर्थन करने से भी नहीं चूकते थे। सर्व धर्म समभाव का अर्थ उनके लिए यह था कि वे एक मुसलमान की भांति नमाज पढ़ें, रोजा रखें तथा मांसाहार को भी स्वीकार कर लें। उन्होंने शायद यह समझने की भूल की थी कि मांसाहार इस्लाम का कोई नितान्त अनिवार्य पहलू है, जबकि ऐसा है नहीं।

अपनी तर्क पटुता तथा व्याख्यान कौशल के बल पर स्वामी विवेकानन्द ने सुधारक वर्ग (मुख्यतः ब्रह्मसमाज, यत्र–तत्र आर्य समाज) पर भी प्रच्छन्न सूक्ष्म प्रहार किये। (विस्तार के लिए मेरा उक्त ग्रन्थ द्रष्टव्य है) मूर्तिपूजा के पाखण्डपूर्ण कृत्यों का निर्लज्ज समर्थन, मांसाहार का अनुचित पक्षपात यहां तक कि सामाजिक राजनीति में देशभक्त, क्रान्तिकारियों को समर्थन न देकर विदेशी सत्ता के प्रति पक्षपात करने तथा स्वयं को राजभक्त घोषित करने जैसे प्रसंग उनके जीवन में मिलते हैं। तिलक महाराज तो सुधारक वर्ग के प्रतिनिधि म. गो. रानाडे के घोषित विरोधी थे। जब सरकार ने (एज आफ कन्सेंट बिल सहवास की अनुमति का बिल (वयस्क होने पर ही पुरुष को स्वपत्नी से संभोग करने का अधिकार देना) पास कराना चाहा तो तिलक ने इसका विरोध इस आधार पर किया कि विदेशी सरकार को हमारे सामाजिक नियमों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है और जब हम स्वतंत्र होंगे तो अपना सुधार स्वयं कर लेंगे। दूसरे शब्दों में सुधार कार्य को खटाई में डालना ही तिलक का लक्ष्य था। यदि यथास्थिति वादियों की चलती रहे तो हमारा धर्म तथा समाज मध्यकालीन जड़ता से कभी भी नहीं उबर सकेगा।

यथा स्थितिवादियों ने पुरातन अनावश्यक तथा युक्ति तर्क सहित प्रथाओं के पक्ष में हास्यास्पद तर्क प्रस्तुत कर उनका औचित्य सिद्ध करना चाहा। उदाहरणार्थ देवताओं की प्रस्तर मूर्तियों की अर्चना में प्रयुक्त चरणामृत पान (पत्थर के देवता पर चढ़ाये तथा उसे सिंचित करने वाले जल, दूध, दही आदि का पेय) को प्रसाद रूप में ग्रहण करने के प्रश्न में वे युक्ति देते हैं कि चरणामृत में विभिन्न धातुओं से निर्मित मूर्तियों के वे रासायनिक तत्त्व समाविष्ट हो जाते हैं अतः यह चरणामृत (वस्तुतः दूषित हानिकर जल) पान शरीर के लिए रोग नाशक होता है। इस प्रकार की विचित्र एवं तर्कहीन व्याख्याओं को पेश करने में थियोसीफिकल सोसाइटी वाले भी थे।

ऋषि दयानन्द सुधारक तथा साथ ही क्रान्तिकारी थे

ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व में सुधारक तथा क्रान्तिकारी दोनों को देखा जा सकता है। विचारक एवं इतिहासकार उन्हें अपने युग का सर्वोपरि सुधारक स्वीकार करते हैं। धर्म, समाज, राष्ट्र और निखिल मानवता में आई विकृतियों को दूर करने के उनके प्रयास सर्व विदित हैं, सर्व स्वीकार्य हैं। केवल समाज सुधार की ही चर्चा करें तो हिन्दू समाज में व्याप्त बाल विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, विधवा उत्पीड़न, अछूत समस्या, नारी शिक्षा का विरोध आदि शतशः सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन करने में उनके प्रयास उन्हें महान सुधारक सिद्ध करते हैं। उनका क्रान्तिकारी होना इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि उन्होंने सर्वथा निर्मल होकर तथा बिना किसी लाग लपेट किये पाखण्डों एवं अंधविश्वासों पर कठोर प्रहार किये तथा उनका उन्मूलन किया।

इस कठोर कर्त्तव्य के निष्पादन में उन्होंने न तो पक्षपात किया और न पूर्वाग्रह से काम लिया। अध्यात्म और धर्म के क्षेत्र में वे क्रान्ति का शंखनाद करते हैं। अनार्ष ग्रन्थों को शास्त्र कोटि से पृथक करना, यज्ञीय हिंसा तथा उसका विधान करने वाले ब्राह्मण तथा सूत्र ग्रन्थों में पाये जाने वाले ऐसे अंशों को एक प्रहार में अप्रामाणिक घोषित करना मूर्तिपूजा अवतारवाद मृतक श्राद्ध, जलाशयों को मोक्ष दायक मानना जैसे धार्मिक पाखण्डों तथा उनके आनुषंगिक मन्तव्यों मंदिरों में होने वाले अनाचार आदि पर तीव्र प्रहार करने में उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। उनका यह क्रान्तिकारी रूप व्यक्ति, परिवार समाज तथा राष्ट्र सभी क्षेत्रों में प्रसारित हुआ था। उन्होंने प्रगति तथा स्वस्थ परम्पराओं के पालन में समन्वय स्थापित किया। धर्म और विज्ञान को परस्पर अविरोधी सिद्ध किया तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों का लाभ लेने की वकालत की।

उन्होंने धर्म को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया और उसे मतमतान्तरों से पृथक बताया। उनकी दृष्टि में मनुष्य वह है जो मननशील होकर पक्षपात रहित आचरण करता है। प्राणि मात्र तथा विशेषतः मनुष्य मात्र के लिए दया, करुणा सदभाव तथा प्रेम का उपदेश तो अनेक महापुरुषों ने दिया, किन्तु अन्यायकारी अधर्मात्मा तथापि बलवान का नाश, अवनति तथा उनके प्रति अप्रियाचरण करने का आदेश क्रान्तिकारी दयानन्द का ही था। उनके पूर्व से व्यास, बाल्मीकि, चाणक्य, समर्थ रामदास आदि की भी यही शिक्षा थी। ये सभी क्रान्तिकारी थे।

– 315 शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

When Will You Came Next?

The day was bright
the darkness falls
in the evening when
a great soul, being enlightened,
came up to show a show
of life, to bid farewell
to the world murmuring
with an unique glow on his face
the onlookers so sad over the
demise, crying oh no! you
must not go, stay, stay for
long, why in so hurry.
Darkness of ignorance is still
Oh! light of the vedas,
Leave us not so hurry
Hundreds and thousands after
you came up on the earth.
When will you come next?

- B. R. Sharma 'Vibhakar'
52/2, Lal Quarter, GZB-201001
Mob. :-9350451497

विरासत का पैगाम–

श्री महर्षि दयानन्द का देवत्व

–स्व० पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थ)

ऋग्वेद ७–६६–१३ में एक मन्त्र आता है जिसमें देवों का लक्षण इन महत्त्वपूर्ण शब्दों में बताया गया हैः–

ऋतावान ऋतजाता ऋतवृधो घोरासो अनृतद्विषः।'' अर्थात देव (ऋतावानः) सत्य का व्रत धारण करने वाले (ऋतजाताः) सत्य के कारण प्रसिद्ध (ऋतावृधः) सत्य को सदा बढ़ाने वाले–सत्य के समर्थक और (घोरासः अनृतद्विषः) असत्य वा झूठ के घोर द्वेषी–विरोधी, असत्य का प्रबल खंडन करने वाले होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'सत्यमया उदेवाः (कौषीतकी ब्रा० २/८)' 'सत्य संहिता वै देवाः' (ऐत० १०६) विद्वांसो हि देवाः। (शतपथ ३, ७, ३, १०) इत्यादि वचन पाये जाते हैं, जिनमें सत्य निष्ठ विद्वानों को देव के नाम से पुकारा गया है किन्तु वेदों में सत्य के समर्थन के साथ असत्य का घोर खण्डन भी विद्वानों का कर्त्तव्य बताया गया है।

महर्षि दयानन्द पर वेदों के देवों का यह लक्षण पूर्णतया चरितार्थ होता है। इसी देवत्व से प्रेरित होकर महर्षि ने (सत्यार्थप्रकाश) लिखा; जिसकी प्रारम्भिक भूमिका में उन्होंने स्पष्ट कहा कि मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। इसलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्थित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहे।'' इत्यादि।

महर्षि दयानन्द के अनुयायी आर्यों के अन्दर यह सत्य के मण्डन और असत्य के खण्डन की भावना पहले जितनी प्रबल थी अब उतनी प्रबल नहीं प्रतीत होती। पुराने आर्य सत्य–सिद्धान्तों को जानने के लिए स्वाध्याय किया करते थे और असत्य के निराकरणार्थ मौखिक व लिखित शास्त्रार्थ आदि साधनों का आश्रय लेते थे जिससे पाखण्ड की अधिक वृद्धि न होने पाती थी और ऐसा करने में लोगों को भी भय वा संकोच होता था किन्तु अब एक तो आर्यों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति कम हो गयी है जिससे बहुत से लोगों को वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान ही नहीं है, जिनको है उनमें से बहुत कम के अन्दर यह योग्यता और लगन है कि वे असत्य और पाखण्ड का युक्तियुक्त खण्डन निर्भयता से कर सकें। इसका परिणाम यह हो रहा है कि देश विदेश में असत्य और पाखण्ड की वृद्धि होती जा रही है क्योंकि अब लोगों को आर्यसमाज जैसी संस्था का भय नहीं रहा जो निर्भयता से असत्य का खण्डन करेगी और आश्यकतानुसार शास्त्रार्थ के लिए ललकारने में भी संकोच न करेगी। कितनी ही पाठय तथा अन्य पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में वेद, वैदिक धर्म, वैदिक–संस्कृति तथा प्राचीन शास्त्र विषयक अशुद्ध बातें लिखी जाती हैं और आर्य विद्वानों द्वारा उन पुस्तकों और लेखों की प्रायः उपेक्षा के कारण पाठकों और युवक वर्ग में भ्रम फैलता है। यह उचित ही है कि मतभेद होने पर भी कटु, कठोर और चुभने वाले अनुचित शब्दों का प्रयोग न किया जाए किन्तु युक्तियुक्त उचित प्रभावजनक शब्दों में सप्रमाण असत्य और पाखण्ड का निवारण भी आवश्यक कर्त्तव्य है चाहे वह कुछ अप्रिय भी लगे। अतः मैं सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के सर्व–सम्मति से गत ८ अक्टूबर १६६१ को नई देहली में निर्वाचित प्रधान के रूप में समस्त आर्य विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि वे युक्तियुक्त सप्रमाण, यथासंभव कोमल किन्तु स्वयं प्रभावजनक शब्दों द्वारा असत्य और पाखण्ड के खण्डन करने में संकोच न करें। असत्य का निराकरण भी देवत्व का एक आवश्यक अंग है।

आर्य समाज का कार्यकर्ता गम्भीरता से सोचे

–प्रणेता - दिवंगत शंकरसिंह वेदालंकार

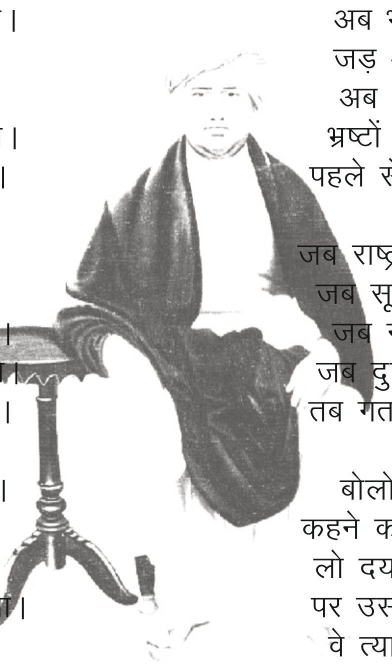
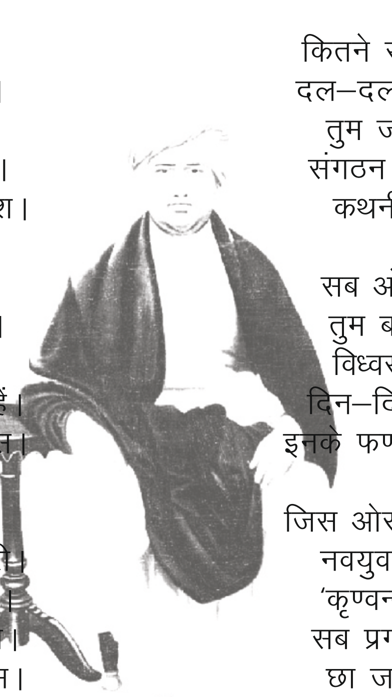

मैंने देखा निज स्वार्थ हेतु कुछ नर समाज में घुस आये।
संस्कार रहे असुरों के हों पर बाहर सुर से दिखलाये।
लोगों ने उनको नेता माना, नेता स्वीकार किया।
अपना स्नेह अनमोल प्यार, उर का भी राग प्रदान किया।
पर समय–समय पर यही लोग करते आये हैं सर्वनाश।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
वह दयानन्द का युग बीता जो था तीखे शूलों वाला।
सर्वत्र दुष्ट दानव दल था जीवित ही खा जाने वाला।
पर उस निर्भय संन्यासी ने आगे बढ़ करके काम किया।
पाखण्डों पर टूटा पवि–सा क्षणभर न कहीं आराम किया।
अब देख रहे उसके तप का उसके शिष्यों में पूर्ण ह्रास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
अब कहां रह गये लेखराम दिन–रात काम करने वाले।
इसके निमित्त जीने वाले इसके निमित्त मरने वाले।
वह श्रद्धानन्द महान् वीर गोली खाकर जो विदा हुआ।
बोला उससा कोई अब भी हा! इस समाज में उदित हुआ।
बलिदानों के उड़ते विमान खाली जाते यमलोक पास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
कितने ही आये चले गये शास्त्रार्थी श्रुतिवेत्ता न्यारे।
जिनके शोणित से दमक रहे हैं काम दीपकों से प्यारे।
अब तो केवल उदरम्भर हैं अपने ही घर भरने वाले।
अपने ही घर को स्वाहा कर सब शैत्य दूर करने वाले।
कुछ जले और कुछ रहे शेष कुछ का आसन्न समग्र नाश।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
जब लाखों और करोड़ों के संस्थान चलाये जाते हैं।
जिनमें आर्यों के श्रम अर्जित सब द्रव्य लुटाये जाते हैं।
सम्पूर्ण शक्ति के स्वर्णकलश निर्मम पिघलाये जाते हैं।
फिर क्यों न वहां ऋषि के पक्के सद्भक्त बनाये जाते हैं।
धन अर्जन में दिन रात यत्न पर कामों में असफल प्रयास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
हो रहे शताब्दी समारोह सम्मेलन भी भारी–भारी।
जिनमें धन बहता पानी–सा कुछ दिन की होती उजियारी।
फिर वही ढाक के तीन पात फिर वही अमावस्या काली।
बोलते रहे ये अरुणचूड फिर भी न लखी रवि की लाली।
एकता भग्न विघटन का स्वर अब भी करता है अट्टहास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

अब भी समाज पाखण्डों में पलता है ठोकर खाता है।
जड़ अर्चा में दिन रात मग्न, परमेश भुलाता जाता है।
अब भी अन्याय अभाव यहां, अज्ञान समादर पाता है।
भ्रष्टों का भ्रष्टाचार सजग नित नूतन जाल बिछाता है।
पहले से तो अब लाख गुना होता है पद–पद पर विनाश।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
जब राष्ट्र भूख की ज्वाला में धू–धू कर प्रतिपल जलता हो।
जब सूखे नर कंकालों का समुदाय सकष्ट बिलखता हो।
जब नंगे लुच्चे नारी का अपमान सब जगह करते हों।
जब दुग्धपान के स्थानों पर मदिरा के चषक ढरकते हों।
तब गत विरुदों के गायन का औचित्य कहां कैसा हुलास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
बोलो इतने साधन पाकर तुमने क्या नाम कमाया है।
कहने को कुछ भी कहो किन्तु सच है सब बना मिटाया है।
लो दयानन्द का नाम और निज पेट भरो अति इठलाओ।
पर उसके सब शुभ सपनों पर जब चाहो पानी फिरवाओ।
वे त्यागी राग विमुक्त और तुम पड़े हुए करते विलास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
कितने स्वर्णिम सिद्धान्त और कितने निकृष्ट तुम हुए आज।
दल–दल में दल–दल बना रहे रण करने को साजते साज।
तुम जो कहते करते न कभी झूठे हो सब पाखण्डी हो।
संगठन सूक्त पढ़ते प्रतिदिन पर फिर भी महाविखण्डी हो।
कथनी करनी में भेद बहुत फिर कैसे कोई करे आस।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
सब ओर तमिस्त्रा छाई है युवको अब उठो तुम्ही जागो।
तुम बनो दोगलों के दुश्मन, उनके उर में गोली दागो।
विध्वस्त हो रहा है समाज अब धर्म धरा धंसती जाती।
दिन–दिन दुष्टों की नीति प्रबल अपना प्रभुत्व है उमगाती।
इनके फण कुचलो और करो मणिक समाज का शुचि विकास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।
जिस ओर युवक चल पड़ते हैं उस ओर सिद्धि चल पड़ती है।
नवयुवकों के नवशोणित से यह धरती स्वर्ण उगलती है।
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का होता जन–जन में नित्य नाद।
सब प्रगति पथ पर चलते हैं मिट जाता है। फैला विवाद।
छा जाता है पूरे जग में दिनमणि का मंगलमय प्रकाश।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

पंजीयन संख्या (R.N.I. No.)- DELMUL/2005/15488
डाक पंजीकरण संख्या DL(c)-01/1213/2021-23
Licence to Post without prepayment of Postage. U (c)-289/2021-23

सोशल मीडिया के माध्यम से स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ें

आर्य समाज के त्यागी, तपस्वी एवं तेजस्वी संन्यासी स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ने के लिए इस लिंक पर क्लिक करें :- *www.facebook.com/SwamiAryavesh* व फेसबुक पेज को लाइक करें तथा अन्य मित्रों को भी प्रेरित करें।

ई-मेल : aryavesh@gmail.com
दूरभाष : 011-42415359, 23274771)

प्रतिष्ठा में :–

अवितरण की दशा में लौटाएँ –
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
"दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

पृष्ठ 1 का शेष

समाज एवं राष्ट्र को आर्य समाज की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है

उपस्थिति विशेष हो। इस अवसर पर धरना तथा प्रदर्शन का जोरदार आयोजन किया जाये जिसमें कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा तथा महिला उत्पीड़न के विरुद्ध जन–जागरण किया जाये तथा महिलाओं को आर्य समाज से जोड़ने का प्रयास किया जाये।

5. शिवरात्रि (ऋषि बोध दिवस) के अवसर पर धार्मिक क्षेत्र में पनप रहे पाखण्ड, अन्धविश्वास, गुरुडम, रुढ़िवाद आदि कुरीतियों के विरुद्ध जन–चेतना पैदा करने के लिए जुलूस निकाले जायें तथा नुक्कड़ नाटक के माध्यम से जातिवाद, साम्प्रदायिकता, धार्मिक पाखण्ड आदि बुराईयों के विरुद्ध जन चेतना चलाया जाये।

इन सब कार्यक्रमों पर धरना, प्रदर्शन व जुलूस आदि निकालने के पीछे भावना है कि पूरे देश तथा विश्व में एक सन्देश जायेगा कि पूरे विश्व की आर्य समाज एक मुद्दे को लेकर सक्रिय हैं। संगठन की शक्ति को बढ़ाने के लिए तथा एकजुटता एवं समन्वय स्थापित करने के लिए इस प्रकार के प्रयास अत्यन्त आवश्यक हैं। इससे आर्य समाज की एक विशेष पहचान बनेगी।

जब हम आर्य समाजी अपने उत्सव, समारोह तथा विविध अवसरों पर शोभा यात्रा निकालते हैं तो यह ध्यान रखा जाये कि अपने महापुरुषों से सम्बन्धित नारे व वैदिक धर्म के नारे लगाने के साथ–साथ ज्वलन्त मुद्दों को लेकर भी नारे लगाये जायें तथा उनसे सम्बन्धित बैनर भी साथ लेकर चलें। इससे लाखों लोगों तक आर्य समाज का सन्देश जायेगा कि आर्य समाज इन मुद्दों पर जागरूक है, समाज को जगाना चाहता है। यदि हम यह सब कर पाये तो हमारा उत्सव मनाना सार्थक हो जायेगा।

जब भी कोई छोटा या बड़ा कार्यक्रम हम करें तो उसकी तैयारी से लेकर सम्पन्न होने तक प्रिन्ट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं वर्तमान में सर्वाधिक प्रभावी सोशल मीडिया के माध्यम से अपने कार्यक्रम का प्रचार करें। जो कार्यक्रम हो रहा है उसे फेसबुक आदि पर डालकर लाखों लोगों तक पहुंचाया जा सकता है। हम जब भी कार्यक्रम करें, अखबारों में, मैगज़ीन में तथा टीवी आदि को अपनी सूचना अवश्य भेजें तथा चित्र भी दें। पूरे देश में इस प्रकार की गतिविधियों से बहुत शीघ्र आर्य समाज की गतिविधियों के बारे में लोगों को जानकारी हो जायेगी। हमारी पूरी कोशिश होनी चाहिए कि हम आर्य समाज से बाहर निकलकर अपने कार्यक्रम करें। प्रातः तथा सायंकाल सैर करने के लिए पार्क में आने वाले लोगों को अपने कार्यक्रमों की जानकारी दें तथा आर्य समाज के जो नवयुवक योग से परिचित हैं वे वहां योग की कक्षायें लगायें तथा धीरे–धीरे विधिवत आर्य समाज के बैनर के नीचे यह कार्यक्रम सम्पन्न हों। वहां आने वालों को अपनी संस्कृति तथा आर्य समाज से भी परिचित करायें।

विभिन्न अवसरों तथा दीपावली आदि पर्वों पर लोग भेंट स्वरूप मिठाई आदि देते हैं। सब जानते हैं कि बाजार में मिठाई के नाम पर जहर बेचा जा रहा है। अगर देनी ही है तो घर पर बनी हुई मिठाई दें लेकिन साथ ही वैदिक साहित्य जैसे 'सत्यार्थ प्रकाश', 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' आदि वैदिक पुस्तकें उपहार स्वरूप अवश्य प्रदान करें। विवाहादि अवसरों पर भी रिश्तेदारों व प्रतिष्ठित व्यक्तियों को वैदिक साहित्य भेंट स्वरूप प्रदान करें। स्थानीय दुकानदारों से यदि साहित्य उपलब्ध नहीं हो तो सार्वदेशिक सभा से साहित्य मंगाया जा सकता है।

महर्षि का निर्वाण हमें जगाने, श्रेष्ठ व्रतों संकल्पों को दुहराने की प्रेरणा देता है। अतः आर्यो! उठो, जागो और अपने कर्तव्यों का बोध करो, आर्य समाज के नेताओं, कर्णधारों तथा कार्यकर्ताओं को मिलकर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए कि आर्य समाज का विस्तार पहले से अधिक होने पर भी हमारा यथोचित प्रचार क्यों नहीं हो पा रहा है। इसलिए आर्यो! आओ एकबार फिर एकजुट होकर इस महर्षि निर्वाण दिवस पर हम संकल्प करें कि हम सब योजनाबद्ध ढंग से महर्षि के मिशन को पूर्ण करेंगे और आने वाले वर्ष 2024 में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जयन्ती मनाने के लिए प्राण–पण से कार्य करेंगे तथा तन–मन–धन से सहयोग करेंगे। पूरे विश्व में जगह–जगह कार्यक्रम आयोजित करके महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा किये गये कार्यों को उल्लेखित करेंगे। महर्षि द्वारा आजादी के आन्दोलन में किये गये योगदान को आज जिस तरह से नजरअंदाज किया जा रहा है, उसे ध्यान में रखकर हम सबको आर्य समाज के मंचों से आम जनमानस को सच्चाई से अवगत कराना होगा। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्वारा किये गये कार्यों तथा देश की आजादी एवं जागरूकता फैलाने में किये गये योगदान के इतिहास को कभी भी झूठ के द्वारा मिटाया नहीं जा सकेगा। हम सबको संकल्पबद्ध होकर कार्य करना होगा तथा महर्षि के विचारों एवं सिद्धान्तों से जन–जन को अवगत कराना होगा। आर्य समाज का निष्ठावान एवं समर्पित कार्यकर्ता चाहे वह विश्व के किसी भी कोने में रहता है वह इन सुझावों के आधार पर अपना दायित्व निश्चित करे और उसके अनुरूप कार्य प्रारम्भ करें तो निश्चय ही महर्षि की दूसरी जन्म शताब्दी मनाना अत्यन्त सार्थक होगा और हम महर्षि के विचारों को करोड़ों नये लोगों तक पहुंचाने में सफल होंगे। महर्षि की 200वीं जन्म जयन्ती के वर्ष में प्रत्येक आर्य कम से कम 200 नये लोगों से सम्पर्क करें और महर्षि दयानन्द जी का जीवन चरित्र एवं उनका साहित्य भेंट करके उन्हें महर्षि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अवगत करायें।

शुभ सूचना ओ३म् शुभ सूचना

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित

ऋषिवर दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित
अद्भुत और अनुपम कालजयी ग्रन्थ

1100/– रुपये में उपलब्ध है

सत्यार्थ प्रकाश
बड़े साईज में उपलब्ध

हिन्दी के एक बड़े सत्यार्थ प्रकाश के साथ छोटे साईज का अंग्रेजी का सत्यार्थ प्रकाश मुफ्त में उपलब्ध है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्वारा लिखित कालजयी ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' को आप अपने आर्य समाज, स्कूल, कॉलेज में रखें तथा इष्ट मित्रों एवं नव-दम्पत्तियों को भेंट करके पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

बड़े साईज का सत्यार्थ प्रकाश बढ़िया कागज तथा सुन्दर बाईंडिंग के साथ तैयार कराया गया है जिसे बिना चश्मे के भी पढ़ा जा सकता है।

हिन्दी के बड़े सत्यार्थ प्रकाश के साथ जो अंग्रेजी का सत्यार्थ प्रकाश दिया जा रहा है वह भी सुन्दर कागज तथा आकर्ष बाईंडिंग में

20X30 का चौथा साईज

उपरोक्त पुस्तक को मंगाने के लिए नीचे दिये गये दूरभाष नम्बर तथा ई–मेल आई.डी. पर बुक कराकर मंगा सकते हैं। डाक से मंगाने पर

–: प्रकाशक :–

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, "दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002
दूरभाष – 011–23274771, 011–42415359, मो.:–9868211979, 8218863689
ई-मेल : *sarvadeshikarya@gmail.com, sarvadeshik@yahoo.co.in*

प्रो० विट्ठलराव आर्य, सभा मंत्री, प्रकाशक व मुद्रक द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान/आसफ अली रोड), नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित तथा ज्योति प्रिंटिंग प्रेस, ई-94, सैक्टर-6, नोएडा-201301 से प्रकाशित एवं मुद्रित। (दूरभाष : 011-23274771)
सम्पादक : प्रो० विट्ठलराव आर्य (सभा मन्त्री) मो.:0-9849560691, 0-9013251500 ई-मेल : *sarvadeshik@yahoo.co.in, sarvadeshikarya@gmail.com* वैबसाइट : *www.vedicaryasamaj.com*
वैदिक सार्वदेशिक साप्ताहिक में छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक या सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सैद्धान्तिक मतैक्यता होना अनिवार्य नहीं है।